Con. 4. VIII-17.49
320

अंक 8
संख्या 17

मंगलवार
7 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 193 से 204 पर विचार] ...1007-1066

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 7 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 193—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** कल हम अनुच्छेद 193 पर वाद-विवाद कर रहे थे। अब हम उस अनुच्छेद पर बहस जारी रखेंगे। एक संशोधन पेश हुआ था पर बहुत से और संशोधन भी हैं। हम उन्हें अब लेंगे। संशोधन संख्या 2586, 2587, 2588 और 2589 एक से हैं। इन संशोधनों में न्यायाधीशों की पदनिवृत्ति की आयु के सम्बन्ध में अन्तर है। एक और संशोधन संख्या 2592 डाक्टर अम्बेडकर के नाम में है, जिनमें ये सब संशोधन आ जाते हैं, केवल आयु का प्रश्न नहीं आता। अतः मेरे विचार में यदि डाक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन पहले पेश कर देते हैं तो आयु के अतिरिक्त अन्य किसी संशोधन के पेश करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। आयु के सम्बन्ध में, हम उस प्रश्न को अलग से ले सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं अपने संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** तो फिर हमें अन्य संशोधन लेने होंगे। श्री के.सी. शर्मा, संशोधन संख्या 2586।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:
>
> '(1) राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा, मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह साठ वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।' ''

श्रीमान् उस अनुच्छेद में राज्यपाल से परामर्श करने की अतिरिक्त शर्त है। मेरा सविनय निवेदन है कि राज्य में उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के विषय में मुख्य न्यायाधिपति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

से परामर्श करना पर्याप्त है। राज्यपाल का किसी प्रकार प्रश्न ही नहीं उठता और उसके साथ परामर्श करना अवांछनीय होगा। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

(संशोधन संख्या 2585, 2588 और 2589 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन संख्या 2590 पर संशोधन पेश करना चाहता हूं, जिसकी मैंने सूचना दी थी। श्रीमान मैं प्रस्ताव करता हूं :

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2590 के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> ''(1) कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'Chief Justice of India' इन शब्दों के अनुवर्त्ती शब्दों के स्थान पर खंड के अन्त तक, निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> 'And such of the judges of the Supreme Court and of the High Court of the State concerned as the President may deem necessary for the purpose and shall hold office until he attains the age of sixty years:
>
> Provided that in the case of appointment of a judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of the High Court of the State shall always be consulted.' "
>
> ''(2) कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) के पश्चात् निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(e) is a distinguished jurist.' "

श्रीमान्, मैंने इस खंड को उस खंड के समान बनाने का प्रयत्न किया है जो हमने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में पारित किया है। मैंने उसी भाषा का प्रयोग किया है जो वहां प्रयुक्त हुई थी। केवल यही बात है कि मैंने राज्य के राज्यपाल का संदर्भ हटा दिया है। मैं अनुभव करता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श कर लेना ही पर्याप्त है। मेरे विचार में राज्य के राज्यपाल से परामर्श करना उचित नहीं होगा। मैं यह भी अनुभव करता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों से भी परामर्श लेना चाहिये। मैं नहीं समझ पाता कि उच्चतम न्यायालय के विषय में हमने अनुच्छेद 103 में जो भाषा प्रयोग की है उससे यह भाषा भिन्न क्यों हो।

मैंने एक सुविख्यात विधिवेता की नियुक्ति का भी उपबंध रखा है। जब हमने उच्चतम न्यायालय के विषय में यह उपबंध रखा है तो मैं नहीं समझता कि हम यह उपबंध क्यों

न करें कि एक सुविख्यात विधिवेता उच्च न्यायालय का न्यायाधीश भी होना चाहिये। मेरे विचार में, श्रीमान्, यह संशोधन सदन को स्वीकार्य होगा, क्योंकि हम इस सिद्धांत को पहले ही स्वीकार कर चुके हैं।

(संशोधन संख्या 2591, 2593, 2594 और 2595 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): संशोधन संख्या 2596। इस मामले पर पहले बहस हो चुकी है। उस समय यह अस्वीकृत हो गया था। क्या मैं इसे अब पेश करूं?

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि उन्हीं युक्तियों को फिर दोहराने से कोई लाभ होगा।

(संशोधन संख्या 2597, 2598, 86, 2599, 2600, 2601 और 2602 पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 2603 को औपचारिक रूप से पेश करता हूं और मैं सूची 2 का संशोधन संख्या 194 भी पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2603 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) में 'or such higher age not exceeding sixty five years as may be fixed in this behalf by law of the Legislatures of the State' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, दोनों संशोधनों का सारांश एक ही है, केवल यही अन्तर है कि मेरे संशोधन में उन शब्दों का स्पष्ट उल्लेख है जिन्हें कि हटाया जाना है। इन शब्दों के हटा देने से यह प्रभाव पड़ेगा कि उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश केवल साठ वर्ष की आयु तक ही पद धारण करेगा और इस संशोधन का उद्देश्य विद्यमान स्थिति को स्पष्ट कर देना है। श्रीमान्, मेरे विचार में मेरे लिये कोई तर्क उपस्थित करना अपेक्षित नहीं है, विशेषत: जबकि मेरे संशोधन का उद्देश्य वर्तमान स्थिति को ही सुनिश्चित कर देना है। किन्तु मेरे संशोधन में जिस उपबंध को हटा देने का सुझाव रखा गया है, उसके विरुद्ध नि:संदेह अनेक और भारी युक्तियां हैं; और न्यायाधीशों की पद-निवृत्ति की आयु को बदलने की शक्ति चाहे राज्य के विधानमंडल में हो अथवा संसद में हो, संविधान में यह एक असुन्दर और अलाभदायक उपबंध ही है। सदन के कई सदस्य नि:संदेह मुझसे सहमत होंगे कि एक विशेष आयु निश्चित कर देना सबसे अच्छा है, चाहे कुछ भी आयु रखी जाये और यह काम स्थायी पक्षों के प्रयत्नों पर न छोड़ा जाये, अन्यथा या तो कोई गैर-सरकारी सदस्य कोई विधेयक उपस्थित करेगा या उस समय जो सरकार होगी उस पर दबाव डाला जायेगा कि वह न्यायाधीशों को निवृति आयु में परिवर्तन कर दे, क्योंकि हो सकता है कि जिन लोगों को आयु सीमा बढ़ जाने में दिलचस्पी हो उनका ऐसे क्षेत्रों में प्रभाव हो जो शायद सरकार को उस दिशा में चला सकते हैं अत: एक विशेष आयु निश्चित कर देने में ही लाभ है, और किसी के प्रयत्नों या कोशिशों की कोई गुंजाइश रखने में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

नहीं है, ताकि लोग यह निश्चय से जान जायें कि संविधान में संशोधन किये बिना यह परिवर्तन नहीं हो सकता। श्रीमान्, इस समस्या के गुणावगुण पर विचार किया जाये तो साठ की आयु के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यह नि:संदेह सत्य है कि इस देश में गत बीस वर्षों में प्रत्याशित आयु बहुत बढ़ गई है। हम देखते तो हैं कि सार्वजनिक जीवन में और वकीलों में ऐसे व्यक्ति हैं जो मेरे इस उपबंध द्वारा निश्चित अधिकतम आयु पार कर चुके हैं किन्तु अपनी संपूर्ण योग्यता से परिपूर्ण हैं; और इस देश के भाग्य पर नियंत्रण कर सकते हैं और सुचारू ढंग से कर सकते हैं; किन्तु, श्रीमान्, वे व्यक्ति अपवाद-स्वरूप है और नियम यह है कि हमारे जैसे देश में शायद लगभग 30 प्रतिशत मामलों में, साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले लोग सक्रिय कर्म के लिये अयोग्य हो जाते हैं। मेरे विचार में यह अधिक सुरक्षायुक्त है कि हम ऐसा उपबंध बना दें कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक भाग भी अपने कार्य के लिये अयोग्य न हो इसकी बजाय कि हम न्यायालयों के बाहर और सार्वजनिक जीवन में जो कुछ होता है उस पर निर्भर करें जहां कि साठ वर्ष की आयु को पार करने के बहुत समय पश्चात् भी लोग ठीक प्रकार कार्य करते रहते हैं और देश की असाधारण रूप में सेवा करते रहते हैं। श्रीमान, मैं अनुभव करता हूं कि इस प्रस्ताव के विषय में अधिक युक्तियां देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इसमें केवल वर्तमान स्थिति को स्पष्ट कर दिया है जो कि सदन को स्वीकार्य है; और यदि दस पन्द्रह वर्ष पश्चात् इस देश में जीवनमान बदल जाता है और चिकित्सा विज्ञान बहुत उन्नति कर जाता है जिससे कि साठ वर्ष की आयु के पश्चात् साधारणत: लोगों को जरावस्था से बचाया जा सकता है तो संविधान में आयु बड़ा देने का शायद वही उचित समय होगा। मेरे विचार में इस समय तो साठ वर्ष की आयु पर्याप्त है और जोखम रहित है। इन कारणों से मुझे आशा है कि सदन मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2604 और 2605 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, खंड (1) (क) में कहा गया है कि ''कोई न्यायाधीश राज्यपाल को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपने पद को त्याग सकेगा।'' मैं चाहता हूं कि वह केवल राष्ट्रपति या भारत के मुख्य न्यायाधिपति को सम्बोधित करके ही अपना पद त्याग सके। अतएव मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (क) में, 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'भारत का मुख्य न्यायाधिपति' ये शब्द रख दिये जायें।''

राष्ट्रपति ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है और वे संसद के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से ही पदच्युत हो सकते हैं। इसलिये श्रीमान्, यदि वह अपने पद का त्याग करना चाहता है तो उसे राष्ट्रपति को सम्बोधित करना चाहिये जिसने उसे नियुक्त किया है, अथवा भारत के मुख्य न्यायाधिपति को सम्बोधित करना चाहिये जो देश में सर्वोच्च न्याय प्राधिकारी है और राज्यपाल को सम्बोधित करने का कोई अर्थ ही नहीं है और मैं नहीं समझता कि राज्यपाल इस मामले में कैसे पड़ सकता है। या

तो राष्ट्रपति या भारत का मुख्य न्यायाधिपति होना चाहिये और श्रीमान्, मुझे आशा है कि इसे शुद्ध कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त यदि 'राज्यपाल' शब्द यहां रखा गया, तो यह अनुचित ही नहीं, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये भी क्षतिपूर्ण होगा।

(संशोधन संख्या 2607 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (ख) में 'Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात् 'the State Legislature being substituted for Parliament in that article' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन से मैं यह उपबंध करना चाहता हूं कि राज्य का विधानमंडल उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सके। इस समय इस खंड में यह उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के हटाने के हेतु उपबन्धित रीति से किसी राज्य के उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को राष्ट्रपति उसके पद से हटा सकेगा। इसका अर्थ यह है कि जब संसद के दोनों सदन, उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई मत द्वारा समर्थित समावेदन राष्ट्रपति के समक्ष रखें, तब राष्ट्रपति सम्बद्ध न्यायाधीश को हटा सकता है। यदि इसी रूप में यह उपखंड पारित हो जायेगा तो मैं अनुभव करता हूं कि ऐसे पदच्युतकरण में राज्य के विधान मंडल का कोई हाथ नहीं होगा। मुख्य बात यह है। क्या न्यायाधीश को हटाने के मामले में संसद एक मात्र प्राधिकारी हो या हम इस मामले में राज्य विधान मंडल को भी शक्ति दे दें? मेरी सुझाई गई प्रक्रिया के विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि संसद उच्चतर प्राधिकारी है अत: वह अधिक सक्षम है। क्या यह बात ठीक है? मेरे विचार में, संसद और राज्य विधान मंडल दोनों निर्वाचित होते हैं, प्रथम सदन पूर्णत: निर्वाचित होता है और द्वितीय सदन अंशत: नाम निर्देशित होता है; दोनों के प्रथम सदन वयस्क मताधिकार के अनुसार निर्वाचित होते हैं यदि हम संसद पर भरोसा कर सकते हैं तो क्या हम राज्य के विधान मंडल पर नहीं कर सकते? अन्ततोगत्वा यह जनता में विश्वास करने का प्रश्न है। क्या हम जनता और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों पर विश्वास करेंगे, या नहीं, चाहें वे केन्द्र में हों या राज्य में हों? इसके अतिरिक्त, जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का सम्बन्ध है, यह सर्वथा सम्भावित है कि संसद उस स्थान से दूर होने के कारण उस प्रश्न से सम्बद्ध विविध मामलों को पूरी तरह समझ न सके और राज्य का विधान मंडल उसी स्थान पर होने के कारण उस मामले का अधिक अच्छा निबटारा कर सके। जब हमने वयस्क मताधिकार स्वीकार किया है तो हमें राज्य विधान मंडल का भी इतना ही विश्वास करना चाहिये, जितना कि हम केन्द्र में संसद का करते हैं। आखिर यदि सदन अनुच्छेद 193 के खंड (1) को देखे, तो पता लगेगा कि जहां तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति का सम्बन्ध है, उसमें केन्द्रीय प्राधिकारियों का ही हाथ नहीं है, वरन् राज्य के कुछ प्राधिकारियों का भी हाथ है, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 193 के

[श्री एच.वी. कामत]

खंड (1) में है। राज्य के राज्यपाल से जो कि प्रान्तीय प्राधिकार है—परामर्श लिया जाता है; दूसरे उस राज्य विशेष के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श किया जाता है—वह भी प्रान्तीय प्राधिकारी है। अतएव, यदि न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, केवल केन्द्र ही नहीं, अपितु प्रान्तों के प्राधिकारियों का भी सम्बन्ध है, तो प्रश्न यह उठता है कि उसे हटाने के सम्बन्ध में भी हम राज्य विधान मंडल का विश्वास क्यों न करें, या उसे ही जांच पड़ताल या महाभियोग का काम क्यों न सौंप दें? यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिये केन्द्र की संसद को यह क्षमता है कि वह राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रख सके, तो मेरे विचार में यह सर्वथा तर्कसंगत है और स्पष्ट है कि जहां राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का सम्बन्ध है राज्य के विधान मंडल को यह क्षमता होनी चाहिये और उसे यह शक्ति दी जानी चाहिये कि वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के हटाने के बारे में राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रख सके। हो सकता है कि मेरे संशोधन की रचना को बदलना पड़े। मेरे सुझाये हुए संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 193 में संसद के स्थान पर राज्य का विधान मंडल रख दिया जाये। एक बार यह सिद्धांत स्वीकृत हो जाये कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के विषय में राज्य के विधान मंडल को अधिकार होना चाहिये कि वह राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे, तो मैं इस संशोधन की रचना मस्विदा समिति की इच्छानुसार बनाने के लिये उद्यत हूं। मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2609। इसका प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 2610 को औपचारिक रूप में पेश करना चाहता हूं जिससे कि डा. अम्बेडकर संशोधन संख्या 195 को पेश कर सकें।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक की कंडिका (ग) में 'Supreme Court of' इन शब्दों के पश्चात् 'the Chief Justice' ये शब्द रख दिये जायें।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2610 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के खंड (ग) में 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

इस संशोधन का उद्देश्य प्रान्तों और देशी राज्यों के बीच सब विभेदों को हटा देना है, जिससे कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के पदाधिकारियों में पूर्णत: अदला-बदली हो सके।

श्रीमान्, मैं संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 को औपचारिक रूप में पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'State' शब्द के स्थान पर 'State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में, 'in any State in or for which there is a High Court' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'High Court' शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के उपखंड (ख) में 'in a State for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के खंड (2) में 'British India' शब्दों के स्थान पर 'India' शब्द रख दिया जाये।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2622 के संदर्भ से...

***अध्यक्ष:** इसे उपस्थित करने से पहले आप औपचारिक रूप से संशोधन संख्या 2622 का पेश कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 के स्थान पर निम्न अंश रख दिया जाये:

'व्याख्या 2–इस खंड के उपखंड (क) और (ख) में, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित राज्य के सम्बन्ध में 'उच्च न्यायालय' का अर्थ ऐसे न्यायालय से है जिसे अनुच्छेद 123 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने, इस संविधान के अनुच्छेद 103 और 106 के प्रयोजनों के लिये, उच्च न्यायालय घोषित कर दिया हो।' ''

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2622 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 को हटा दिया जाये।''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इन सब संशोधनों, संख्या 196 से 200 तक, का उद्देश्य ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के बीच सब विभेदों को हटाना है। कुछ संशोधन, विशेषत: संशोधन 199 और 200 मुख्य संशोधन के परिणामस्वरूप ही है।

(संशोधन संख्या 2611, 2612, 2613, 2615 और 2616 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संख्या 2617 का प्रश्न नहीं उठता। 2618।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'in succession' शब्दों के पश्चात् 'or has been a pleader practising for at least twelve years' ये शब्द रख दिये जायें।''

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (क) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'or has practised as a Pleader' ये शब्द रख दिये जायें, और 'which a person' इन शब्दों के स्थान पर 'which such person' ये शब्द रख दिये जायें और अन्त में 'or a pleader' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (ख) में, 'First Schedule or' इन शब्दों के पश्चात् 'has' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये, और 'Court' शब्द के पश्चात् जहां कहीं भी वह हो, 'or a pleader' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

श्रीमान्, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में भी मैंने ऐसे ही संशोधन पेश किये थे। मैं 'प्लीडर' कहलाने वाले वकीलों को भी वही पद देना चाहता हूं जो हम अधिवक्ताओं को दे रहे हैं, क्योंकि मेरे मतानुसार, जहां तक योग्यता का सम्बन्ध है, वे समान रूप से अर्ह होते हैं और तीसरे संशोधन में, यदि वह स्वीकृत हो गया तो वह इस प्रकार बन जायेगा:

> ''इस कालावधि की संगणना के अन्तर्गत, जिसमें कि कोई व्यक्ति प्रथम सूची के भाग 1 या भाग 2 में उस समय के लिये उल्लिखित किसी राज्य में न्यायिक पद धारण कर चुका है अथवा किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता या प्लीडर रह चुका है, इस संविधान के आरम्भ में पूर्व की वह कोई कालावधि भी होगी, आदि, आदि।''

व्याख्या 1 में खंड (1) इस प्रकार बन जायेगा:

''किसी उच्च न्यायालय के अधिवक्ता रहने की या प्लीडर के रूप में काम करने की संगणना के अन्तर्गत वह कोई कालावधि भी होगी, जिसमें किसी व्यक्ति ने अधिवक्ता होने के पश्चात् न्यायिक पद धारण किया हो।''

इन शब्दों के साथ मैं इन संशोधनों को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 2619 और 2623 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** समस्त संशोधन पेश हो चुके हैं और अब अनुच्छेद तथा संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई है और भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्य के राज्यपाल से केवल परामर्श करने का उपबंध रखा गया है। मैं सर्वथा सहमत हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये, न्यायाधीशों को नियुक्त करने वाले प्राधिकारी यथासम्भव उच्चतम होने चाहियें, किन्तु मुझे अधिक अच्छा लगता यदि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और राज्यपाल दोनों की मंत्रणा पर करते। किन्तु यह अब सम्भव नहीं है, पर उसके बाद मैं चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के विषय में कुछ अन्तर रखा जाये और मैं अपने मित्र श्री कामत के संशोधन पर आता हूं, जिसका मैं बलपूर्वक समर्थन करता हूं। प्रस्तावित उपबंध के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना इतना ही कठिन होगा, जितना कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना है और केवल संसद द्वारा ही जो कि समस्त गणराज्य में सर्वोच्च विधान निकाय है, हटाने के सवाल पर बहस की जा सकती है और वही यह काम कर सकती है। अत: यदि यह उपबंध रहने दिया जाये, तो राज्यों के विधान मंडलों को उच्च न्यायालय और उसके न्यायाधीशों के विषय में कुछ भी कृत्य नहीं करने होंगे, सिवाय इसके कि वे उनके लिये अधिकतम आयु निश्चित कर देंगे, जो कि 60 और 65 के बीच होगी और उनके वेतन निश्चित करेंगे और ऐसी अन्य तुच्छ बातें कर सकेंगे। मैं नहीं समझता कि राज्यों के विधान मंडलों पर इतना अविश्वास किया जाना चाहिये कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के विषय में वे कुछ बोल ही न सकें या ऐसी कल्पना की जानी चाहिये कि वे न्यायाधीशों को तुच्छ कारणों से हटा देंगे। दूसरी बात यह है, कि विधान मंडलों द्वारा न्यायाधीशों का हटाना कठिन बनाने के लिये यह उपबंध किया जा सकता है कि अन्तिम आदेश स्वयं राष्ट्रपति ही देगा, किन्तु फिर भी राज्य विधान मंडलों को इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिये राज्यपाल द्वारा, राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन तो पेश कर ही सकें। मेरे विचार में यह एक अच्छा उपबंध होगा जिसका प्रभाव कार्यक्षमता के रूप में होगा और जिससे कि राज्य की न्यायपालिका और विधान मंडल और कार्यपालिका के मध्य अधिक अच्छे सम्बन्ध हो जायेंगे। हम यह भी उपबंध बना सकते हैं कि न्यायाधीश को केवल सीमित और परिमित कारणों से ही हटाया जा सकता है और हम इसे स्वविवेक पर न छोड़ें। कारण वे ही हो सकते हैं जो पिछले 1935 के अधिनियम की धारा 220 में लिखे हैं जहां यह उपबन्धित है कि न्यायाधीश को बादशाह अपनी राजकीय मुद्रा के द्वारा उसके पद से हटा सकता है यदि

[डा. पी.एस. देशमुख]

प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति बादशाह द्वारा पूछे जाने पर, यह प्रतिवेदन दे कि उस कारण से न्यायाधीश हटाया जाना चाहिये। अतएव ये कारण उस धारा में से लिये जा सकते हैं और उन आधारों पर जो कि समुचित रूप से परिवर्तित हों, राज्य के विधान मंडल को यह क्षमता होनी चाहिये कि वह राष्ट्रपति को समावेदन दे सके और न्यायाधीश को हटाया जा सके। मैं नहीं समझता कि राज्यपाल के अतिरिक्त कोई अन्य साधन है जिससे कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता, कार्यक्षमता या आचरण का पता लग सके। प्रान्तीय राज्यपाल और प्रान्तीय विधान मंडल ही इन सब बातों को जान सकते हैं और यदि उन्हें विश्वास हो जाये कि कोई न्यायाधीश हटाया जाना चाहिये तो मेरे विचार में उन्हें ऐसा करने के लिये अपेक्षित शक्ति मिलनी चाहिये।

जहां तक कि श्री ताहिर के संशोधन का सम्बन्ध है, यह सिद्धांत स्वीकृत नहीं हुआ है कि प्लीडर भी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह होने चाहियें और मेरे विचार में यह बिल्कुल ठीक है; क्योंकि कोई भी प्लीडर जिसका जरा काम चलता हो और जो जरा योग्य हो अपने आपको अधिवक्ता के रूप में पंजीबद्ध करवा ही लेता है—और अधिवक्ता पंजीबद्ध होने में कोई अधिक कठिनाई नहीं होती और कुछ वर्षों पश्चात् जब उसे अपेक्षित अनुभव हो जाये तब उसे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह समझा जायेगा। अतः मेरे विचार में उस संशोधन में कोई सार नहीं है।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मुझे श्री कामत के संशोधन पर कुछ शब्द कहने हैं, जिसका समर्थन डा. देशमुख ने किया है। इस अनुच्छेद में, इस समय, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिये प्रक्रिया और उन्हें हटाने का प्राधिकार वही है जो अनुच्छेद 103 खंड (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के हटाने के लिये उपबंधित है, अर्थात् कि संसद के दोनों सदनों द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन पेश होगा और उसे प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत का और जिस अधिवेशन में उस पर बहस तथा मतदान हो उसमें उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा। संशोधन का यह आशय है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में संसद के स्थान पर प्रान्तीय विधान मंडल रख दिया जाये। सदन को इसी बात पर विचार करना है। मेरा निवेदन है कि संविधान के मस्विदे में जो उपबंध है वह ठीक है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण मामला है—उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना और इसकी जांच उन लोगों द्वारा बहुत तटस्थ तरीके से की जानी चाहिये, जिन पर स्थानीय पक्षपातों का कोई प्रभाव न पड़े और जो उस मामले पर पक्षपातहीन होकर विचार कर सकें। प्रान्तों में विशेषतः उनमें जहां कि सदस्य संख्या बहुत कम है अथवा जहां दलों का सुनिश्चित विभाजन है—सदस्यों पर स्थानीय पक्षपातों और अन्य विचारों का प्रभाव पड़ सकता है। अतः इसी कारण, मस्विदा समिति ने इस परन्तुक के खंड (ख) में यह सुझाव रखा है कि यह मामला संसद के दोनों सदनों के मत पर छोड़ देना चाहिये। कहा जाता है कि संसद के सदस्य घटनास्थल से बहुत दूर होंगे और स्थानीय मामलों को पूरी तरह समझ नहीं

सकेंगे। हां, यही कारण है कि यह मामला प्रान्तीय विधान मंडल पर नहीं छोड़ना चाहिये। उड़ीसा, असम, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रान्त जैसे प्रान्तों में, जहां कि विधान मंडल के सदस्यों की संख्या कम है और उनमें से कइयों में केवल एक ही सदन होगा। केवल कुछ सदस्यों के मत से ही ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निश्चित हो सकता है। यदि कोई ऐसा न्यायाधीश हो, जिसे सत्तारूढ़ दल का नेता न चाहता हो या जिसने अपने न्यायिक विनिश्चयों से अथवा अन्यथा उस दल को अप्रसन्न कर दिया हो, तो स्थानीय पक्षपातों के आने की संभावना है। ऐसे मामले में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बहुत हद तक धक्का पहुंचेगा। इसी कारण संविधान के मस्जिदे में यह उपबंध है कि यह मामला संसद पर छोड़ देना चाहिये। पहले, भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन, उच्च न्यायालय का न्यायाधीश तभी हटाया जा सकता था जबकि, बादशाह के पूछने पर, प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति यह प्रतिवेदन दे देती कि वह कदाचार अथवा मस्तिष्क या शरीर की दुर्बलता के कारण उस पद को धारण करने के लिये अयोग्य है। संविधान के मस्विदे के अंतर्गत, संसद के दोनों सदनों के समावेदन पर ही राष्ट्रपति कार्यवाही करेगा। यह बहुत अच्छा उपबंध है। मैं सदन से कहूंगा कि वह परन्तुक के खंड (ख) के उपबंध को न छेड़े और श्री कामत द्वारा प्रस्तावित संशोधन को रद्द कर दे।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यख महोदय, मैं श्री एच.वी. कामत द्वारा प्रस्तावित संशोधन का विरोध करना चाहता हूं, जिसके द्वारा वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना, संविधान के मस्विदे में उपबन्धित तरीके से अधिक सरल बनाना चाहते हैं। ऐसा करना और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की शक्ति प्रान्तीय विधान मंडल को देना बहुत जोखिम की बात होगी। जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिये अनुच्छेद 103, खंड (4) में उपबंध रख दिया गया है तो मुझे कोई कारण समझ में नहीं आता कि प्रान्तीय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना हम सरलतर क्यों बनायें।

जैसा कि पूर्ववर्ती वक्ता, डा. बक्शी टेकचन्द कह चुके हैं प्रान्तीय विधान मंडल पर राजनैतिक विचारों और स्थानीय बातों का आसानी से प्रभाव पड़ सकता है, जबकि उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश ने कोई ऐसे विनिश्चय किये हों जो सत्तारूढ़ दल को या विधान मंडल में बहुमत वाले दल को स्वीकार्य न हों या पसंद न हों। अत: उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना सरल नहीं बनाना चाहिये। आखिर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सच्चाई और स्थायित्व पर बहुत कुछ निर्भर होता है और यदि उसकी स्थिति को ऐसा अस्थिर बना दिया जाये कि वह प्रान्तीय विधान मंडल के मतदान से हटाया जा सके तो यह जोखिम की बात होगी और इसका प्रभाव उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता पर पड़ेगा। अत: मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करता हूं। मैं माननीय डा. अम्बेडकर के संशोधनों का समर्थन करता हूं जिनसे कि सारे उच्च न्यायालयों के लिये, चाहे वे राज्यों में हों अथवा प्रान्तों में, एक से उपबंध रख दिये गये हैं।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे अनुच्छेद 193 के उपबंधों पर व्यापक वाद-विवाद में भाग लेने का जो यह अवसर मिला है उसके लिये मैं आपका

[डा. पी.के. सेन]

आभारी हूं। इस प्रकार के अन्य अनुच्छेदों के सम्बन्ध में मैंने बहुत से संशोधनों की सूचना दी थी, किन्तु मैं उन्हें पेश नहीं कर रहा हूं। मैं अनुभव करता हूं कि अनुच्छेद 193 के उपबंधों पर विचार करने में कई बातें आ जाती हैं। वे बातें 196, 197 आदि अन्य अनुच्छेद में बिखरी हुई हैं। जब तक हम उन पर विचार न करें, या अनुच्छेद 193 के रूप को निश्चित करते समय उन्हें ध्यान में न रखें, तो मुझे भय है कि हम ठीक विनिश्चय करने मे सफल नहीं हो सकते।

आइये, हम इन बातों को एक-एक करके लें। अनुच्छेद 193 में आवश्यक बात उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति-आयु की है कि वह साठ वर्ष हो या पैंसठ वर्ष हो। कुछ लोग ऐसा अनुभव करते हैं—मैं यह नहीं कहता कि उनके अनुभव का कोई आधार ही नहीं है कि साठ वर्ष की आयु पर एक व्यक्ति सक्रिय काम करने और देश-सेवा के कार्य में अंशदान करने के योग्य नहीं रहता, कि वह न्यायाधीश मंडली में इतने ध्यान से कार्य नहीं कर सकता कि जितना कि आवश्यक है और कि इसलिये निवृत्ति के लिये साठ वर्ष की आयु उचित है। दूसरी ओर यह अनुभव किया जाता है और उस विचारधारा का भी आधार बहुत ठीक है—कि इस समय निवृत्ति की आयु अधिक होनी चाहिये क्योंकि लोग साठ वर्ष के बहुत बाद में भी प्रायः सार्वजनिक जीवन में अत्यन्त सक्रिय भाग लेते हुए देखे गये हैं। हमारे पास ऐसे लोगों के बहुत से उदाहरण हैं जो कि राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों में बहुत शक्ति लगा सकते हैं और बहुत ध्यान लगा कर कार्य कर सकते हैं ऐसा होते हुए कोई कारण नहीं है कि न्यायिक कार्य में कोई साठ वर्ष की आयु के पश्चात् अयोग्य और अक्षम हो जायें। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं इस बात को छिपाना नहीं चाहता कि मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये 60 वर्ष से अधिक आयु रखने के पक्ष में हूं—कम से कम 62 वर्ष तो होनी ही चाहिये। अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि आयु सीमा पर अन्य बातों का प्रभाव क्या पड़ता है। न्यायाधीश के दृष्टिकोण से सोचिये। एक व्यक्ति को जब नियुक्त होना हो और उसे निर्णय करना पड़े कि उसे जो पद दिया जा रहा है, उसे स्वीकार करे या ना कर दे, तब वह किन बातों पर विचार करता है? वेतन का प्रश्न आता है, उत्तर वेतन का भी प्रश्न उठता है और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या उस पद पर एक विशेष अवधि तक रहने के पश्चात् उसे अन्य न्यायालयों में वकालत करने की अनुमति होगी, चाहे उसी उच्च न्यायालय में, या उसके क्षेत्राधिकार के अधीन न्यायालयों में न सही। अब जो व्यक्ति नियुक्त होना होगा, उसके लिये हम सोच सकते हैं कि वह प्रान्त में उस कार्य के लिये बहुत ही पारंगत रूप में योग्य होगा। स्वभावतः उस व्यक्ति को चुना जायेगा जो विधि सम्बधी योग्यता में उस प्रान्त में सर्वाधिक सुविख्यात होगा। अब उसे अपना निर्णय करना होगा: यदि वह देखे कि केवल पांच वर्ष शेष हैं, और साठ वर्ष का हो जाने पर कोई उत्तर वेतन भी नहीं मिलेगा और उसे अपने साधनों पर ही निर्भर रहना होगा अथवा उत्तर वेतन नाममात्र का ही होगा और ब्रिटेन के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान उसे उदारता से निवृत्ति वेतन नहीं मिलेगा, जो कि ब्रिटेन में उनके वेतन का 75 प्रतिशत होता है; और जब वह यह देखेगा कि रुपया कमाने का कोई और उपाय भी नहीं है: कि वह किसी अन्य उच्च न्यायालय में भी या उसके अधीनस्थ न्यायालयों में भी जाकर महत्त्वपूर्ण वादों वकालत

नहीं कर सकेगा: यदि उसे वकालत से बिल्कुल वंचित कर दिया जायेगा, तो वह क्या करेगा? उसे इसी निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि यद्यपि वह बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा का पद है पर उसे अनिच्छा से उसे अस्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ेगा। इसका यही परिणाम होगा। मेरा निवेदन है कि इससे हानि होगी, क्योंकि राज्य को उन व्यक्तियों की सेवायें प्राप्त नहीं होंगी जो वास्तव में योग्य हों और उनके स्थान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिये दूसरी श्रेणी या तीसरी श्रेणी के लोगों को चुनना होगा। अतएव मेरा निवेदन है कि यह बहुत गम्भीर समस्या है। यह तुच्छ सी बात बिल्कुल नहीं है—यह आयु का प्रश्न है। इसका अन्य बातों पर प्रभाव और प्रतिप्रभाव पड़ता है। यदि उसे साठ पर ही निवृत्त हो जाना है, तो ठीक है, अच्छा है। किन्तु क्या उसे अच्छा उत्तर वेतन मिलेगा? क्या उसे वकालत करने का अधिकार है, यदि उसे उत्तर वेतन न भी मिले? क्या वह विधि की वकालत से अपनी आजीविका कमा सकता है, उस उच्च न्यायालय में न सही जहां उसने पद धारण किया था, वरन् किसी अन्य न्यायालय में, किसी अन्य उच्च न्यायालय में, अथवा उस अन्य उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय में ही सही?

श्रीमान्, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी थी, जिसे मैं औपचारिक रूप में पेश तो नहीं कर रहा हूं, किन्तु जिसका इस प्रश्न से बहुत सम्बन्ध है। मान लीजिये एक व्यक्ति को अट्ठावन वर्ष की आयु पर अस्वस्थता के कारण निवृत्त होने के लिये बाध्य होना पड़ता है। यह मान लिया जाना चाहिये, कि उस उच्च पद पर कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहेगा यदि स्वास्थ्य, के कारणों से वह अनुभव करे कि उसे जो कार्य सौंपा गया है, वह उसे ठीक प्रकार नहीं निभा सकता। स्वभावत: वह कह देगा ''मुझे खेद है, मैं अब काम नहीं चला सकता। मैं निवृत होना चाहता हूं।'' अब उस विषय में, मैं निवेदन करता हूं कि उसे पूरा उत्तर-वेतन देने का उपबंध होना चाहिये, चाहे वह साठ वर्ष की आयु तक काम नहीं कर सका। इससे कुछ खर्च बढ़ सकता है, किन्तु उस खर्च से अधिक लाभ हो जायेगा क्योंकि उसके स्थान पर एक स्वस्थ व्यक्ति के लग जाने से कार्यक्षमता बढ़ेगी। अत: आप देखेंगे कि केवल सामान्य स्थिति में उत्तर वेतन के ही प्रश्न पर विचार नहीं करना है, वरन् उस स्थिति में उत्तर वेतन पर भी विचार करना है जब कोई व्यक्ति अस्वस्थता के कारण निवृत्त होने के लिये बाध्य हो जाता है।

अब, हम अभी तक नहीं जानते कि क्या कोई अतिरिक्त न्यायाधीश होना चाहिये या कोई अस्थायी न्यायाधीश होना चाहिये या नहीं, क्योंकि हमने अभी सम्बद्ध अनुच्छेद पर विचार नहीं किया है। संविधान के मस्विदे में उनकी नियुक्ति के विषय में कई अनुच्छेद रखे हुए हैं उन अनुच्छेदों का क्या होगा, यह कोई नहीं जानता कि सदन उन्हें स्वीकार करेगा या नहीं। किन्तु यह मानते हुए कि अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे, अथवा अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे अतिरिक्त न्यायाधीश दो वर्षों से अनधिक पद धारण करेंगे। दो वर्ष तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहने के पश्चात् क्या अतिरिक्त न्यायाधीश वकालत कर सकेंगे? अस्तु, यदि दो वर्ष तक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहने के पश्चात् वह वकालत न कर सके, तो फल यह होगा कि अतिरिक्त न्यायाधीश का पद बहुत कम लोग स्वीकार करना चाहेंगे। यह कहा जा सकता है कि अतिरिक्त न्यायाधीशों को नियुक्त करना अपेक्षित नहीं होगा, क्योंकि यदि आपके पास पूरे न्यायाधीश हों, जो

[डा. पी.के. सेन]

कि अस्थायी या अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के बिना ही समस्त कार्य संतोषजनक रूप से कर सकें, तो फिर वह प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु यदि सदन का विचार हो कि अतिरिक्त न्यायाधीशों या अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाये, तो मेरा निवेदन है कि उनके विषय में भी वकालत करने या उसमें रुकावट होने के प्रश्न पर विचार करना होगा।

मैं इन बातों की ओर इसलिये संकेत कर रहा हूं, श्रीमान्, कि मुझे विश्वास है कि इन बातों पर विचार किये बिना कोई व्यक्ति उस पद को स्वीकार नहीं कर सकेगा, यदि वह 54-55 वर्ष का हो, क्योंकि वह पूरे उत्तर वेतन का अधिकारी नहीं हो पायेगा। अतः उसे विनिश्चत करते समय इन्हीं बातों पर विचार करना होगा।

मेरा निवेदन है कि निवृत्ति की आयु-सीमा पर विचार करते समय इस बातों को ध्यान में रखना होगा और आयु के प्रश्न को ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वह उन बातों से बिल्कुल असम्बद्ध है जो संविधान के मस्विदे के इस अध्याय की विविध धाराओं में दी हुई हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, जिस आयु पर उच्च न्यायालय का न्यायाधीश निवृत्त होगा, उसके विषय में बहुत मतभेद है और साठ वर्ष की आयु निश्चय करने वालों ने विस्तृत जांच पड़ताल करके ही इसे रखा है। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि मस्विदा-समिति ने जो विनिश्चय किया है वह और जो संशोधन पेश होने हैं और स्वीकृत होने हैं, वे वर्तमान परिस्थिति में सर्वोत्तम हैं।

सर्वप्रथम हमें व्यक्तिगत रूप में न्यायाधीशों की नहीं, वरन् समस्त न्यायपालिका के दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिये और उसकी स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करना चाहिये, जिसे बनाये रखने और जिसकी रक्षा करने के लिये हम इतने उत्सुक हैं। पहली बात यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु-सीमा साठ वर्ष रखी गई है। विद्यमान अनुच्छेद में अधिक आयु का, जो पैंसठ वर्ष से अनधिक होगी, उपबंध हटाना होगा। ऐसा इसलिये किया गया है कि यह सिद्धान्ततः गलत है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उस अवधि को बढ़ाने के लिये प्रयत्न कर सके अथवा 62 या पैंसठ वर्ष की आयु पर उनकी पदावधि को बढ़ाना विधान मंडल की इच्छा पर निर्भर रहे—चाहे वह प्रान्तीय हो या केन्द्रीय। एक बार एक व्यक्ति न्यायाधीश नियुक्त हो जाये, तो उसके सद्व्यवहार के होते हुए उनकी पदावधि निश्चित होनी चहिये और उनकी पदावधि घटनी या बढ़नी नहीं चाहिये। इस बात को ध्यान में रखते हुए वह खंड हट जाना चाहिये। तत्पश्चात्, एक अन्य संशोधन अतिरिक्त न्यायाधीशों और अस्थायी न्यायाधीशों को हटाने के विषय में पेश होगा और मुझे आशा है कि स्वीकार हो जायेगा। यह देखा गया है कि भारत में अस्थायी और अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति कोई संतोषजनक प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि इससे हम उस पक्षपातहीनता और स्वतंत्रता से दूर हो जायें जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपेक्षित है।

तत्पश्चात् दूसरा अनुच्छेद आता है, जिसकी चर्चा मेरे मित्र डा. सेन ने की है। अनुच्छेद 196 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भारत के किसी न्यायालय में वकालत

करने का निषेध होगा। अत: स्वभावत: इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में ऐसे योग्य व्यक्तियों को आकृष्ट करना संभव होगा, जैसे कि न्याय के समुचित प्रशासन के लिये अपेक्षित है। हमें वर्तमान व्यवस्था में रहने की आदत पड़ गई है। किन्तु हमें यह देखना है कि इस संविधान द्वारा हमें किस प्रकार की न्यायपालिका का निर्माण करना हैं। सर्वप्रथम, सब इस बात को स्वीकार करते हैं कि साठ वर्ष की आयु पर उच्च न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीश—मैं सबके लिये नहीं कहता—न्यायाधीश मंडली में रहने के अयोग्य हो जाते हैं। जब ऐसी बात है तो संविधान में अधिक आयु सीमा रखना जोखिम की बात होगी। न्यायाधीशों को निवृत्ति के पश्चात् वकालत नहीं करने दी जायेगी; अन्यथा उनकी सेवावधि के अन्तिम वर्षों में यह प्रलोभन हो सकता है कि ऐसी तरह काम किया जाये जिससे कि निवृत्ति के पश्चात् उनके पास वकालत का काम आये।

उत्तर वेतन का प्रश्न भी उठाया गया है। मैं जानता हूं कि न्यायाधीशों को पर्याप्त उत्तर वेतन नहीं मिलता; किन्तु उस प्रश्न पर तो विधान मंडल ही विचार करेगा। अत: इतना ही प्रश्न शेष रहता है कि उन योग्य व्यक्तियों का क्या किया जाये जो साठ वर्ष की आयु पर पर्याप्त रूप से स्वस्थ हों और जिनकी सेवाओं की देश के लिये आवश्यकता हो। जो न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जायें उनके लिये संविधान में दो रास्तों का उपबंध है। उच्चतम न्यायालय की निवृत्ति की आयु पैंसठ वर्ष है। जो न्यायाधीश प्रतिभाशील और अच्छे होंगे और स्वस्थ होंगे वे उच्चतम न्यायालय में नियुक्त हो सकेंगे। अनुच्छेद 200 में उच्च न्यायालय के लिये विशिष्ट प्रयोजनार्थ न्यायाधीशों के रखने का भी उपबंध है। जो न्यायाधीश निवृत होने के पश्चात् शारीरिक तथा मानसिक रूप में स्वस्थ हों उन्हें उस अनुच्छेद के अधीन न्याय प्रशासन में भाग लेने के लिये सदा आमंत्रित किया जा सकेगा। अत: जो न्यायाधीश निवृत्त होने के पश्चात् अपना कार्य करने के योग्य होंगे, उनके लिये सदा मार्ग खुला रहेगा किन्तु कठिनाई यह रही है, जैसा कि अनुभव से ज्ञात हुआ है, कि अधिकांश न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु से पूर्व ही अपने कार्य के योग्य नहीं रहते। न्यायाधीश मंडली में अपनी पदावधि के अन्तिम एक दो वर्षों में वे अधिकतर न्याय-प्रशासन में बाधास्वरूप ही बन जाते हैं और कुछ नहीं। अत: साठ वर्ष की निश्चित आयु सीमा रख दी गई हैं। समस्त स्वीकृत योजना ही वर्तमान व्यवस्था से भिन्न है। अंततोगत्वा इसकी सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि क्या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की मान प्रतिष्ठा इतनी है कि उसमें योग्य व्यक्ति आकृष्ट हों। दुर्भाग्यवश इस देश में वह परम्परा नहीं है जो कि इंग्लिस्तान में है। वहां, योग्यतम वकील के लिये भी, जिसकी आय बहुत ज्यादा हो, न्यायाधीश मंडली में आमंत्रित होना सम्मान की बात है और यदि वह सम्मान उसे दो बार प्रदान किया जाये तो, परम्परानुसार, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। न्यायाधिपति ग्रीन जैसे वकील ने भी, जिसकी वकालत इंग्लिस्तान में सर्वाधिक थी, न्यायाधीश का पद मिलने पर उसे स्वीकार कर लिया था: यदि हम उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की ऐसी प्रतिष्ठा बना दें जैसी कि उन्हें इंग्लिस्तान में मिलती है, तो मुझे विश्वास है कि योग्य व्यक्ति इस पद पर आ जायेंगे, चाहे निवृत्ति आयु साठ हो या पैंसठ और चाहे निवृत्ति वेतन कम हो या अधिक।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये आयु सीमा निश्चित करने के विरुद्ध हूं। मैं अनुभव करता हूं कि यह कहना मनमानी है कि 60 वर्ष की आयु पर न्यायाधीश बेकार हो जाते हैं इसलिये उन्हें निवृत्त हो जाना चाहिये। यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह राज्यपाल तथा मुख्य न्यायाधिपति की मंत्रणा पर न्यायाधीश से निवृत्त होने के लिये कहे। यह सर्वथा संभव है कि पचास वर्ष की आयु पर ही वह अपने कृत्यों का कुशलतापूर्वक और समुचित रूप से निर्वहन करने में असमर्थ हो।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि खंड 2 (क) को भी हटा देना चाहिये, जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अर्हताएं रखी गई हैं। यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह जिसे चाहे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिये चुन ले। ऐसा कोई अनुभव या घटना नहीं हुई जिसके आधार पर राष्ट्रपति, राज्यपाल और मुख्य न्यायाधिपति का अविश्वास किया जा सके। यह स्पष्ट है कि किसी ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं बनाया जायेगा जो अनुभवशील व्यक्ति न हो, जिसने किसी न्यायालय में दस वर्ष तक वकालत न की हो अथवा जो कम से कम दस वर्ष के लिये न्यायिक अधिकारी न रहा हो। किन्तु ऐसे प्रतिभासम्पन्न लोगों के उदारहण भी हैं जिनमें ये सब अर्हताएं नहीं हैं। आखिर, एक व्यक्ति के जीवन में सृजन का काल तीस पैंतीस वर्ष की आयु के आस पास ही होता है। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि कोई नवयुवक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश क्यों नहीं बन सकता।

मुझे एक बात और कहनी है। मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करता हूं। वे चाहते हैं कि प्रान्तीय विधान मंडल के प्रथम सदन द्वारा समावेदन पेश होने पर न्यायाधीश को हटाया जा सके। मैं अनुभव करता हूं कि जब प्रान्तीय विधान मंडलों का वयस्क मताधिकार के आधार पर पुनर्निर्माण होगा, तब प्रान्तीय विधान मंडलों के हाथों में ऐसी शक्ति सौंपना सुरक्षित नहीं होगा। प्रान्तों में पहले ही पक्षपात और आवेश बहुत है। प्रान्तीयता और सम्प्रदायवाद का बोलबाला है। जहां राजनैतिक अपरिपक्वता हो वहां यह सम्भव है कि राजनैतिक दल किसी न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय का गलत अर्थ समझ लें और उलटा अर्थ निकाल लें। अतः, श्रीमान्, कार्यक्षमता के लिये यह ठीक है, मैं अनुभव करता हूं कि समस्त शक्ति राष्ट्रपति में और संसद में निहित होनी चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुझे कुछ बातें कहनी हैं। प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन के सम्बन्ध में, मेरा ख्याल है कि उसमें कुछ अच्छी बातें हैं। उनका संशोधन यह है कि राज्यों में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को नियुक्त करने में, राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से और उच्चतम न्यायालय या सम्बद्ध राज्य के उच्च न्यायालय के ऐसे अन्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा, जिससे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये परामर्श करना आवश्यक समझे और न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने पद पर आसीन रहेगा। उनका परन्तुक इस प्रकार है: किन्तु मुख्य न्यायाधिपति के अतिरिक्त किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से अवश्य परामर्श किया जायेगा। श्रीमान्, मैं देखता हूं कि यह संशोधन

बिल्कुल अनुच्छेद 103 के समान है, जिसे हम पहले ही पारित कर चुके हैं। उस अनुच्छेद के खंड (2) में उपबन्धित है कि:

> ''उच्चतम न्यायालय के तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के, ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करके, जिनसे कि इस प्रयोजन के लिये परामर्श करना राष्ट्रपति आवश्यक समझे राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।''

यह सिद्धांत पहले ही स्वीकार हो चुका है कि उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से भी, जिनसे राष्ट्रपति परामर्श करना उचित समझे परामर्श किया जाना चाहिये। यह संशोधन अनुच्छेद 103 के खंड (2) के समान ही है। वास्तव में इस संशोधन का उद्देश्य केवल इस अनुच्छेद को उस स्वीकृत सिद्धांत के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करना ही है। रचना की दृष्टि से और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करने की आवश्यकता की दृष्टि से यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

उनके संशोधन का दूसरा भाग यह है कि एक सुविख्यात विधिवेत्ता भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त हो सकता है। वास्तव में हमने इसे अनुच्छेद 103 के सम्बन्ध में जिसकी मैंने अभी चर्चा की है, स्वीकार किया है। अनुच्छेद 103 के खंड (3) के उपखंड (ग) में हमने उपबन्ध किया है कि एक सुविख्यात विधिवेत्ता को उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। अत: प्रोफेसर सक्सेना के विद्यमान संशोधन का मूलभूत सिद्धांत सदन में पहले ही स्वीकृत हो चुका है।

साठ वर्ष की आयु पर अनिवार्य निवृत्ति के उपबंध के विषय में, मेरा ख्याल है कि यह बहुत अच्छी बात नहीं होगी। मेरे विचार में हमारे देश में लोगों की आयु और कार्य करने की आयु बढ़ जायेगी। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश साधारण लोग नहीं होते। वे सर्वोत्तम कानूनी लोगों में से छांटे जाते हैं और उन्हें विधि-सम्बन्धी साहित्य से सम्पर्क रखना होता है। मैं नहीं समझता कि एक न्यायाधीश का उपयोगी जीवन साठ पर ही व्यतीत हो चुकता हो। यह उपबन्धित है कि वह साठ पर ही निवृत्त हो जायेगा जब तक कि वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त न हो जाये, जिस अवस्था में कि वह पैंसठ पर निवृत्त होगा। अनुच्छेद 196 के अनुसार वह निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय के समक्ष या किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकेगा। आयु-सीमा को साठ पर नियत करने का और अनुच्छेद 196 का प्रभाव अच्छा नहीं होगा। इंग्लिस्तान में यह उपबंध तो अवश्य है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश किसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता; किन्तु वहां आयु सीमा बहत्तर की है और बहत्तर के पश्चात् भी सुविख्यात न्यायाधीशों को कानूनी लार्ड नियुक्त कर दिया जाता है और वे हाउस आफ लार्डस की न्यायिक समिति के सदस्यों के रूप में, लार्ड आफ अपील के रूप में आदि पद धारण करते हैं और वे जीवनपर्यन्त पद पर रहते हैं। अत: पहले न्यायाधीश के रूप में और फिर लार्ड के रूप में वे लम्बा उपयोगी जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु बहत्तर वर्ष की

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

आयु के पश्चात् वे अवैतनिक रूप में कार्य करते हैं। अंग्रेज न्यायाधीश के समक्ष इतने अवसर हैं किन्तु भारतीय न्यायाधीश के समक्ष कोई अवसर नहीं होता। साठ पर निवृत्त हो जाने के पश्चात् वह किसी न्यायालय में वकालत करने के अयोग्य होगा, सरकार के अधीन किसी पद को धारण करने के लिये भी कार्यरूप में अयोग्य ही होगा, क्योंकि वह सिद्धान्ततः गलत है। इस प्रकार वह बुरा से बुरा राजनैतिक अछूत हो जायेगा। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि आयु-सीमा पर समुचित अवसर आने पर ही विचार होना चाहिये। इन थोड़े से शब्दों के साथ, मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु-सीमा निश्चित करने के विषय में कुछ बातें कहना चाहता हूं। अनुच्छेद 193 के मस्विदे में वह आयु साठ पर निश्चित की गई थी, किन्तु उसमें एक और उपबंध था कि न्यायाधीश अधिक आयु तक भी पद धारण कर सकता है, जो कि पैंसठ वर्ष से अधिक न हो, जैसा कि इस प्रयोजन के लिये राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा निश्चित कर दे। अब, सामान्यतः यह ख्याल मालूम होता है कि यह बाद का भाग इस अनुच्छेद में से हटा दिया जाये, और सबकी सम्मति इस पर केन्द्रित हो गई प्रतीत होती है कि हमें आयु-सीमा साठ पर निश्चित कर देनी चाहिये। 1935 के अधिनियम में आयु-सीमा साठ पर निश्चित थी और उसे बढ़ाने का उपबन्ध नहीं था। क्योंकि उसे बढ़ाने का कोई उपबंध नहीं था, अतः मस्विदा समिति ने संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 87 पर इस अनुच्छेद के नीचे यह लिख दिया था कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थितियों को ध्यान में रख कर, मस्विदा समिति ने अनुच्छेद 193 में रेखांकित शब्द जोड़ दिये हैं जिससे कि प्रत्येक राज्य का विधान मंडल 65 वर्ष से अनधिक कोई भी आयु सीमा निश्चित कर सके। जब यह मस्विदा बना था, उस समय शायद मस्विदा समिति की यह सम्मति थी कि ऐसा कोई उपबंध बनाना चहिये, जिससे कि आयु-सीमा बढ़ा कर पैंसठ वर्ष की जा सके और इसे संभव बनाने के लिये उन्होंने ये शब्द जोड़ दिये ''अथवा उससे अधिक उतने वर्ष की आयु को प्राप्त कर ले जो पैंसठ वर्ष से अधिक न हो और जिसे राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा एतदर्थ निश्चित करे।'' तत्पश्चात्, श्रीमान्, संविधान के मस्विदे के कुछ उपबंधों के विषय में गृह मंत्रालय ने अपनी कुछ सिफारिशें भेजीं। इस सम्बन्ध में उनके स्मृतिपत्र में उन्होंने कहा कि उनका यह मत था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति के लिये साधारण आयु-सीमा साठ वर्ष की होनी चाहिये, किन्तु अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में, नियुक्त करने वाला प्राधिकारी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की पदावधि तरेसठ वर्ष से अनधिक आयु की कालावधि तक बढ़ा सकता है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के विषय में अड़सठ वर्ष तक बढ़ा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि अनुभव से पता चलता है कि उच्च न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते अपनी उपयोगिता की सीमा को पार कर चुकते हैं और आयु-सीमा को स्वतः बढ़ाना सार्वजनिक हित में नहीं होगा। अतः उन्होंने यह सुझाव रखा था कि राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की सेवावधि को अधिकतम तीन वर्ष के लिये बढ़ा सकता है। उनका यही सुझाव था। अब श्रीमान्, लोगों का यह मत प्रतीत होता है कि

कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिये। मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने, जो कि मस्विदा-समिति के भी सदस्य हैं, कहा है कि अधिकांश न्यायाधीश अपनी पदावधि के अन्तिम एक दो वर्षों में कुशलता से कार्य करने के योग्य नहीं रहते। अब, श्रीमान्, इस अनुच्छेद का सम्बन्ध एक अन्य अनुच्छेद 200 से भी है। मस्विदा समिति का पहले यह विचार था कि विधान मंडल इस अवधि को बढ़ाये; गृह मंत्रालय ने कहा कि यह काम राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये और अनुच्छेद 200 में एक उपबंध है कि:

> ''इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी व्यक्ति से, जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना पर सकेगा, आदि...।''

जब एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को साठ की आयु में निवृत्त करना है, तो मैं नहीं समझ सकता कि इसका क्या औचित्य है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से प्रार्थना करे कि वह आकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कृत्यों को पूरा करे; और यह भी कि यदि वह आ जाये, तो वह, समस्त विशेषाधिकारों आदि के साथ, अपरिमित समय के लिये, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य करता रह सकता है। वास्तव में इसका यह अर्थ है कि एक ओर तो हम अनुच्छेद 193 में यह उपबंध कर रहे हैं कि उसे साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जाना चाहिये और राष्ट्रपति या विधान मंडल द्वारा किसी व्यक्ति का अवधि बढ़ाने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये, पर दूसरी ओर हम यह भी रख रहे हैं कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से कह सकता है कि वह आकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य चलाये और गृह मंत्रालय का मत यह है कि इस अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति वैयक्तिक मामलों में करे। मेरे विचार में यह विसंगतिपूर्ण है। शायद हम इस कठिनाई में इसलिये पड़ गये हैं कि हम अपर अस्थायी न्यायाधीशों के विरुद्ध थे, जिसकी कि चर्चा मेरे माननीय मित्र श्री के.एम. मुंशी ने की है। नि:संदेह ऐसे मामले भी हो चुके हैं जबकि उन लोगों ने जो अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त हुये थे इस बात से लाभ उठाया हो कि वे न्यायाधीश मंडली में बैठते थे, किन्तु ऐसे सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के ही उदाहरण भी हैं जो केवल अस्थायी न्यायाधीशों के रूप में ही कार्य करते रहे, किन्तु जिन्होंने बाद में इस बात से कोई लाभ नहीं उठाया कि वे न्यायाधीश मंडली में थे; उन्हें उसमें कोई लाभ नहीं हुआ वरन आर्थिक और वित्तिक हानि हुई। मुझे कुछ व्यक्तियों का पता है जो अस्थायी न्यायाधीश रहे थे और उनके विषय में कोई भी ऐसा नहीं कह सकता कि उन्होंने अपनी स्थिति से लाभ उठाया हो। साथ ही विद्यमान दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में अनिच्छा होती है, जिसके उचित कारण हो सकते हैं, किन्तु यह बात अपेक्षित हो गई है कि अवशिष्ट कार्य को समाप्त करने के लिये कुछ प्रबंध होना ही चाहिये। किसी उच्च न्यायालय में न्यायिक कार्य बढ़ सकता है और विविध कारणों से हम अस्थायी या अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति के विरुद्ध हैं, अत: हमने अनुच्छेद 200 को रखना आवश्यक समझा। ऐसी मंशा मालूम होती है कि ऐसे मामले में किसी निवृत न्यायाधीश को मुख्य

[श्री एच.वी. पातस्कर]

न्यायाधिपति पुराने कार्य के अवशिष्ट को या नये कार्य को निबटाने के लिये, बुला सकता है। जहां तक न्यायाधीशों की आयु-सीमा का सम्बन्ध है, हम गृह मंत्रालय की इस सिफारिश को नहीं मानने जा रहे हैं कि राष्ट्रपति को नियुक्त करने वाला प्राधिकारी होने की हैसियत से, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की कालावधि को बढ़ाने का प्राधिकार होना चाहिये, हम उसे बढ़ाने की शक्ति विधान मंडल को भी नहीं दे रहे हैं, हम प्रमुख न्यायाधिपति को यह शक्ति दे रहे हैं कि वह निवृत न्यायाधीश को आकर न्यायाधीश के रूप में काम करने के लिये कह सके; दो तीन वर्ष के लिये यह व्यवस्था हो सकती है। परिणाम यह होता है कि एक अनुच्छेद में तो हम यह रख देते हैं कि वह साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जायेगा और दूसरे अनुच्छेद (200) में यह बात है कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश को बुलाकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य दे सकेगा। इस प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की कालावधि में वृद्धि करने का काम हम लगभग मुख्य न्यायाधिपति के ही हाथ में छोड़ने जा रहे हैं और एक मुख्य न्यायाधिपति किसी विशेष व्यक्ति को इसीलिये नियुक्त कर सकता है कि वह इतने वर्षों से कार्य करता आ रहा है और कई ऐसे कारण हो सकते हैं जिनसे लोगों को इस अनुच्छेद 200 के अधीन अधिक समय मिल ही जायेगा। अतएव, मेरे विचार में साठ वर्ष की कालावधि का समूचा प्रश्न अब तो पहले से भी अधिक उलझन में पड़ गया है और इसमें इतने परिवर्तन भी हो गये हैं। एक बार मस्विदा समिति का यह विचार में था कि वैयक्तिक मामलों में साठ वर्ष से अधिक समय बढ़ाने का उपबंध होना चाहिये और वह इस चीज को विधान मंडल पर छोड़ना चाहती थी। गृह मंत्रालय ने कहा था कि यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये और अन्त में हमारा यह निश्चय प्रतीत होता है कि वह साठ की आयु पर निवृत हो जायें किन्तु एक अन्य प्रकार की युक्ति द्वारा और इस कारण कि हम कोई अस्थायी या अपर न्यायाधीश रखना नहीं चाहते, अतः हम फिर इस अवधि को बढ़ाने के लिये उपबंध कर रहे हैं। कार्य रूप में किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपने मुख्य न्यायाधिपति से यह कहलवाना सरल होगा कि बहुत सा कार्य बाकी है अतः उसे अधिक समय तक रखना चाहिये और इस अवधि को बढ़ाने की कोई सीमा ही नहीं है। यह एक विसंगति है जिस पर ध्यान से विचार करना चाहिये।

***अध्यक्षः** डाक्टर अम्बेडकर क्या आप इस पर बोलना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं श्रीमान्। मैं नहीं समझता कि कोई उत्तर अपेक्षित है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न अंश रख दिया जाये:

'सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल के परामर्श के पश्चात् सम्बद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश पर और भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा उसके हस्ताक्षर और मुद्रा सहित

अधिपत्र द्वारा नियुक्त होगा, और वह तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह 63 वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके, नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह साठ वर्ष की आयु प्राप्त कर ले।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2590 के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:

(1) कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'Chief Justice of India' इन शब्दों के अनुवर्ती शब्दों के स्थान पर खंड के अन्त तक, निम्न शब्द रख दिये जायें:

'And such of the judges of the Supreme Court and of the High Court of the State concerned as the President may deem necessary for purpose and shall hold office until he attains the age of sixty years:

Provided that in the case of appointment of a judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of the High Court of the State shall always be consulted.' ''

''(2) कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) के पश्चात् निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(e) is a distinguished jurist.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2603 के सदंर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'or such higher age not exceeding sixty five years as may be fixed in this behalf by law of the Legislature of the State' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (क) में, 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'भारत का मुख्य न्यायाधिपति' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के उपखंड (1) के परन्तुक के उपखंड (ख) में 'Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात् 'the State Legislature being substituted for Parliament in that article' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

'कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2610 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के खंड (ग) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'in any State in or for which there is a High Court' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में 'High Court' शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के उपखंड (ख) में, 'in a State for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के सदंर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के खंड (2) में 'British India' शब्दों के स्थान पर 'India' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'in succession' शब्दों के पश्चात् 'or has been a pleader practising for at least twelve years' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (क) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'or has practised as a pleader' ये शब्द रख दिये जायें और 'which a person' इन शब्दों के स्थान पर 'which such person' ये शब्द रख दिये जायें और अन्त में 'or a pleader' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (ख) में 'First Schedule or' इन शब्दों के पश्चात् 'has' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये और 'court' शब्द के पश्चात् जहां कहीं भी वह हो, 'or a pleader' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 193 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 193 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 193-क

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर के.टी. शाह ने एक संशोधन संशोधन संख्या 2624 की सूचना दी है कि एक नवीन अनुच्छेद, अनुच्छेद 193-क रख दिया जाये।

***प्रो. के.टी. शाह:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं।

''कि निम्न नवीन अनुच्छेद 193-क, अनुच्छेद 193 के पश्चात् जोड़ दिया जाये:

'193-क-कोई व्यक्ति जो पांच वर्ष तक लगातार उच्चतम न्यायालय अथवा फेडरल न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो। भारत सरकार अथवा राज्य की सरकार के अधीन किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा, जिसमें राजदूत, मंत्री, प्लेनीपोटेन्शरी, उच्च आयुक्त, वाणिज्य आयुक्त, वाणिज्य दूत, तथा भारत में या संघ के किसी राज्य की सरकार में मंत्री का पद भी सम्मिलित है।' ''

श्रीमान् मैं न्यायपालिका को कार्यपालिका से सर्वथा पृथक तथा स्वतंत्र करने के जिस सिद्धांत का समर्थन करता रहा हूं, यह भी उसी का एक अंग है। कार्यपालिका ने सर्वोच्च न्यायिक अधिकारियों को लुभाने के लिये विगत में जो विविध उपाय अपनाये हैं उनमें से एक यह भी है कि जो कार्यपालिका के सुझाव को अधिक सरलता से स्वीकार करेंगे या उनके लिये अधिक सुविधाजनक होंगे उन्हें कार्यपालिका में अधिक सुहावने अवसर देने की सम्भावना होगी।

इस सम्बन्ध में मैं पूर्ववर्ती सरकार के आचरण का हवाला दे सकता हूं? तत्कालीन भारत सरकार का यह तरीका था या परम्परा थी कि, कम से कम, जहां तक व्यवहार-वादों के न्यायाधीशों का सम्बन्ध है, उन्हें सेवाकाल में बहुत पहले ही, कार्यपालिका या न्यायपालिका दोनों में से एक प्रकार की सेवा पसंद करने के लिये कहा जाता था। एक बार पसंद कर लेने के पश्चात् सामान्यत: वह उसी में रहता था। उन दिनों कार्यपालिका और न्यायपालिका इतनी पृथक नहीं थी जितनी हम आज चाहते हैं; किन्तु फिर भी यह परम्परा उस समय चालू थी। यदि कोई परिवर्तन होता है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर पहुंचने पर ही होता है। सरकार उस समय जो पद दे सकती थी वे सीमित थे अत: कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने का क्षेत्र भी सीमित था। किन्तु अब की नई स्थिति में जब प्रभुता के प्राधिकार भी हमें प्राप्त हैं उच्चतम कोटि के न्यायिक अधिकारी को जो लाभदायक या सुविधाजनक सिद्ध हो प्रलोभन के लिये जो पद दिये जा सकते हैं उनकी संख्या बहुत होगी; अत: इस संशोधन में यह सुझाव है कि कम से कम उन लोगों के लिये इसका वर्जन होना चाहिये जिन्होंने कम से कम पांच वर्ष के लिये ऐसा उच्च न्यायिक पद धारण किया हो। हम जिस संक्रमण काल में से गुजर रहे है उसमें यह भी बहुत कठिन है कि ऐसी परम्परा या रीतियां स्थापित हो सकें जो कि सांविधानिक उपबंधों का स्थान ले लें। क्योंकि यदि इस समय कोई परम्परा स्थापित की जाये तो वह असाधारण परिस्थितियों में असाधारण वस्तु समझी जायेगी, अत: शायद वह बाध्यकारी न हों। अत: इस संशोधन में यह सुझाव दिया गया है कि संविधान में ही ऐसा उपबंध होना चाहिये कि न्यायिक अधिकारियों को इस संशोधन में उल्लिखित न्यायिक पद पर स्थानान्तरित नहीं करना चाहिये। मैं मानता हूं कि यह मामला इतना सीधा है और इसका जो सिद्धांत है वह इतना स्पष्ट है कि इस पर कोई मतभेद ही नहीं हो सकता जब तक कि आप अपनी न्यायपालिका को कार्यपालिका के, किसी प्रकार अधीन, या प्रभाव में न रखना चाहते हों।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं उस संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं जो मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने अभी सदन के समक्ष रखा है। इस संशोधन का उद्देश्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सच्चाई का अनुसेवन करना है। मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर शाह यह नहीं चाहते कि निवृत्त न्यायाधीशों को इस संशोधन में उल्लिखित पदों की आकांक्षा करने से रोक दिया जाये किन्तु उनका उद्देश्य यह है कि ऐसे न्यायाधीशों को, जो उस समय उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश-मंडली या किसी अन्य उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में हो सरकार की कार्यपालिका में कोई पद प्राप्त न हो।

***डा. बक्शी टेकचन्दः** भाषा तो ऐसी नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** हां, पांच वर्ष के लिये। न्यायाधीश 65 वर्ष तक सेवा कर सकता है। यहां पर संशोधन में लिखा है कि ऐसा न्यायाधीश, जो 5 वर्ष तक अनवरत सेवा कर चुका है, इस संशोधन में उल्लिखित किसी पद पर नियुक्ति नहीं होनी चाहिये। मेरे मतानुसार यह बहुत अच्छा सिद्धांत है। अन्य देशों में ऐसा हुआ है कि न्यायाधीश को 5 वर्ष या अधिक कार्य करने के पश्चात् किसी कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य पर लगा दिया गया, जब कि उसके विचार, या मस्तिष्क अथवा निर्णय की स्वतंत्रता ऐसी तीक्ष्ण हो गई कि वह कार्यपालिका के लिये सह्य न रही। मेरे विचार में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की ही बात है—मुझे याद नहीं है कि उसने इस तरीके से किस अवसर पर काम लिया, किन्तु इस शताब्दी की तीसरी दशाब्दी में, जब उसने देखा कि उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों के विचार असह्य है, तो उसने अधिक न्यायाधीश नियुक्त करके उसे हल करना चाहा, जिससे कि उस विशेष बात के लिये जिसे कि वह पारित करना चाहता था उसे अपेक्षित बहुमत प्राप्त हो सके। यह भी एक उपाय है कि ऐसे न्यायाधीशों की संख्या को बढ़ा दिया जाये जो कि एक विशेष विचारधारा के पक्ष में हों। क्योंकि आपको स्मरण होगा कि देश में उच्चतम न्यायालय को विवादों का निर्णय करना होगा—सांविधानिक विवादों का, जो केन्द्र और एककों के बीच हों तथा एकक और एकक के बीच में हों। कार्यपालिका को इनमें से कई प्रश्नों में दिलचस्पी होती है और यह बहुत सम्भव है—अधिकांश में संभव है—कि कोई विशेष मामला जो उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश हो ऐसे महान महत्त्व का हो और राष्ट्रपति तथा कार्यपालिका को उसमें ऐसी दिलचस्पी हो कि वे शायद उस पर उच्चतम न्यायालय से एक विशेष प्रकार का निर्णय करवाना चाहें। उन्हें यह देख कर असुविधा हो सकती है कि उच्चतम न्यायालय की इच्छा वैसा करने की नहीं है और इसका एक उपाय यह भी हो सकता है कि असुविधाकारी न्यायाधीशों को हटा कर कम सुविधाकारी स्थानों पर भेज दिया जाये। न्यायाधीश भी आखिर मनुष्य ही होता है और राजदूत पद जैसा प्रलोभन...

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस अध्याय में केवल उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों पर ही हम विचार कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि पंडित भार्गव ने प्रोफेसर शाह के संशोधन को पढ़ा नहीं हैं। उसमें उच्चतम न्यायालय की भी चर्चा है और वह उस रूप में पेश हुआ है, अतः मुझे उस संशोधन में उल्लिखित न्यायाधीशों के विषय में भी बोलने का

[श्री एच.वी. कामत]

अधिकार है—मुझे आशा है, श्रीमान् कि इसमें आपकी अनुमति है। यदि कोई न्यायाधीश, राजदूत, उच्च आयुक्त, मंत्री आदि के पद के लिये आकांक्षा रखता है या उसे इसकी आशा दिलाई जाती है—तो वह मनुष्य ही है और आखिर हमारी अपनी निर्बलताएं हैं और यह मान लेना मानवता के अनुरूप ही है कि कार्यपालिका उसके समक्ष जो प्रलोभन रखे, वह उससे परे नहीं होगा—मेरा निवेदन है कि उससे उसकी न्यायिक स्वतंत्रता और ईमानदारी पर प्रभाव पड़ेगा और मुझे विश्वास है कि इस सदन में कोई यह नहीं चाहता कि ऐसा परिणाम निकले। हमारे न्यायाधीश, चाहे वे कहीं भी हों—राज्यों में या केन्द्र में—न्यायिक स्वतंत्रता के आदर्श नमूने होने चाहियें, जो अपने निर्णयों और कार्यों में निर्भय हों, केन्द्रीय प्राधिकारियों या राज्यिक प्राधिकारियों से उन्हें भय न हो और उनकी कृपा की भी चिन्ता न हो। यदि न्यायाधीशों के लिये ऐसी शर्त नहीं रखी जाती है, तो यह सम्भव है कि हम उन्हें यथेष्ट सबल और यथेष्ट सच्चे नहीं पायेंगे। किन्तु मुझे आशा है कि यह शर्त निवृत्त न्यायाधीशों पर लागू नहीं होगी। यदि वे राजदूत जैसे किसी पद के लिये योग्य है तो निःसंदेह उन्हें नियुक्त कर देना चाहिये, किन्तु जो न्यायाधीश के पद पर हों उनके लिये मेरे विचार में इस सदन को यह सिद्धांत निश्चित कर देना चाहिये कि अपने पद पर रहते हुये उन्हें कार्यपालिका में किसी पद की आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये। मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मेरा भी ख्याल है कि प्रो. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर हमें ध्यान से विचार करना चाहिये। कुछ लोग कह सकते हैं कि इस समय इस देश में योग्य व्यक्तियों की कमी है और यदि हम यह उपबंध कर देंगे, तो शायद इन उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये व्यक्तियों का अभाव हो जाये। किन्तु यहां हम इस देश के भविष्य के लिये एक संविधान का निर्माण कर रहे हैं और यह केवल सीमित कालावधि के लिये नहीं होगा, किन्तु बहुत लम्बे समय तक चलेगा और इसलिये इस प्रकार का उपबंध हमारे विचार के योग्य है। हमने पहले ही यह रख दिया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय में वकालत न करने दी जायेगी। हां, वह बहुत ठीक उपबंध है और बहुत अच्छा है, किन्तु यदि निवृत्ति के पश्चात् अन्य उच्च पदों पर नियुक्त होने का प्रलोभन न हटाया गया, तो संभव है कि कार्यपालिका या कोई सत्तारूढ़ दल उसका दुरुपयोग कर सकता है और वह ऐसे प्रलोभन दिखा सकता है जिससे कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़े। मैं स्वयं अनुभव करता हूं कि यह संशोधन बहुत अच्छा है और लाभदायक है। चाहे भाषा भिन्न रखनी पड़े, पर मुझे आशा है कि संविधान में कहीं न कहीं यहां उल्लिखित सिद्धांत को रख दिया जायेगा, जिससे कि न्यायपालिका प्रलोभन से परे रहे और कोई उस पर प्रभाव न डाल सके।

***अध्यक्षः** डाक्टर अम्बेडकर, क्या आप प्रोफेसर शाह के संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मैं प्रोफेसर शाह के इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। यदि मैं उनको ठीक समझता हूं तो उन्होंने कहा था कि उनके संशोधन का उद्देश्य न्यायपालिका और कार्यपालिका के पार्थक्य के

सिद्धांत को पूरा करना नहीं बल्कि सफल बनाना है। मैं नहीं समझता कि इस पर कोई विवाद है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका में पार्थक्य होना चाहिये और वास्तव में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों सम्बन्धी सब अनुच्छेदों में इस बात को ध्यान में रखा गया है। किन्तु जो प्रश्न उठता है, वह तो यह है: इससे न्यायपालिका और कार्यपालिका में पार्थक्य कैसे स्थापित हो सकेगा। जहां तक न्यायपालिका के कार्यपालिका से पार्थक्य के सिद्धांत को मैं समझ पाया हूं इसका अर्थ यह है कि जब कोई व्यक्ति न्यायपालिका पद को धारण कर रहा हो, तब वह किसी ऐसे पद पर नहीं होना चाहिये जिससे कि उसे कार्यपालिका की शक्ति प्राप्त हो; इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति कार्यपालिका का पद धारण किये हुए हो, तब वह उनके साथ न्यायपालिका का पद धारण न करे। किन्तु इस संशोधन में बिल्कुल दूसरा ही सिद्धांत है, जहां तक कि मैं इसे समझ सका हूं। इसमें तो यह निश्चित कर दिया गया है कि जो व्यक्ति कुछ वर्ष न्यायपालिका में कुछ वर्ष सेवा कर चुका है, वह तत्पश्चात् कैसी सेवा में लगे। मेरे विचार में इससे तो बिल्कुल अलग ही समस्या उत्पन्न होती है। इससे वही समस्या पैदा होती है जिस पर हम लोक सेवा आयोग के सम्बन्ध मे विचार करेंगे, कि क्या लोक सेवा आयोग का सदस्य अपनी पदावधि पूरी करने के पश्चात् किसी अन्य पद पर नियुक्त होने का अधिकारी है। मुझे यह प्रतीत होता है कि न्यायपालिका के सदस्यों की स्थिति लोक सेवा अयोग के सदस्यों की स्थिति से भिन्न है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं लोक सेवा आयोग के सदस्यों का प्रशासनीय सेवाओं की नियुक्ति के विषय में कार्यपालिका से गूढ़ सम्बन्ध होता है। बहुत हद तक न्यायपालिका का कार्यपालिका से कोई सम्बन्ध नहीं होता: इसका तो सम्बन्ध जनता के अधिकारों का और कुछ हद तक भारत सरकार और एकक सरकारों के हकों का न्याय करने से है। बहुत हद तक, मेरे विचार में, इसका सम्बन्ध जनता के हकों से ही होगा, जिसमें कि उस समय की सरकार को मुश्किल से ही कोई दिलचस्पी होगी। परिणामत: कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने की संभावना बहुत कम होगी, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवल सैद्धांतिक आधार पर किसी व्यक्ति को अन्य पद धारण करने के अनर्ह बना देना तो मामले को बहुत बढ़ाना होगा। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हम अपनी न्यायपालिका के लिये जो उपबंध रख रहे हैं वे उन पदों को धारण करने वाले लोगों की दृष्टि से बहुत असंतोषजनक हैं। हम उन्हें साठ वर्ष की आयु पर पद त्याग करने के लिये कह रहे हैं जब कि इंग्लिस्तान में एक व्यक्ति सत्तर वर्ष तक पद धारण कर सकता है। यह भी स्मरण रखना होगा कि संयुक्त राज्य अमरीका में उच्चतम न्यायालय का पद लगभग जीवन पर्यन्त चलता है, इसलिये अमरीका या इंग्लिस्तान में किसी व्यक्ति के निवृत्ति उपरांत अन्य पद ढ़ंढने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी प्रकार संयुक्त राज्य में, जहां तक निवृत्ति-वेतन का सम्बन्ध है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का निवृत्ति वेतन वही होता है जो उसका वेतन हो; दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है। इंग्लिस्तान में भी, जहां तक मैं समझता हूं, निवृत्ति वेतन उस वेतन का लगभग 70, 80 प्रतिशत होता है, जो कि न्यायाधीशों को मिलता है। जैसा कि मैंने कहा है, निवृत्ति विषयक हमारे नियम व्यक्ति पर भार स्वरूप होते हैं क्योंकि उसके लिये साठ पर निवृत्त होना अपेक्षित हो जाता है। हमारे निवृत्ति-वेतन विषयक नियम बहुत कड़े हैं क्योंकि हम

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

बहुत कम ही निवृत्ति वेतन देते हैं इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मेरे विचार में प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन उनके प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये, जो न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करना है, अनावश्यक है और इस दृष्टि से भी अनावश्यक है कि इससे न्यायपालिका में पद स्वीकार करने वालों पर बहुत भार पड़ जाता है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं कह सकता हूं कि यह संशोधन निवृत्त न्यायाधीशों पर लागू नहीं होता, वरन् उस समय न्यायाधीश मंडली में काम करते हुए न्यायाधीशों पर लागू होता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो यह संशोधन गड़बड़ वाला है। उसमें लिखा है कि वह उस व्यक्ति पर लागू होगा जो लगातार पांच वर्षों की कालावधि के लिये सेवा कर चुका हो। इसका अर्थ यह है कि यदि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को पांच वर्ष से कम के लिए नियुक्त कर दे, तो उस पर यह लागू नहीं होगा, जिससे कि प्रो. शाह के मन का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। राष्ट्रपति को किसी विशेष मामले में पूरा अधिकार होगा कि वह किसी न्यायाधीश को पांच वर्ष से न्यून कालावधि के लिये नियुक्त कर दे और बाद में उसे राजदूत अथवा वाणिज्य दूत या वाणिज्य आयुक्त आदि का पद प्रदान कर दे। मुझे तो इस समूची बात में गड़बड़ दिखाई देती है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि निम्न नवीन अनुच्छेद 193-क, अनुच्छेद 193 के पश्चात् जोड़ दिया जाये:

'193-क कोई व्यक्ति जो पांच वर्ष तक लगातार उच्चतम न्यायालय, अथवा फेडरल न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो, भारत सरकार अथवा राज्य की सरकार के अधीन किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा, जिसमें राजदूत, मंत्री, प्लेनीपोटेन्शरी, उच्च आयुक्त, वाणिज्य आयुक्त, वाणिज्य दूत तथा भारत में या संघ के किसी राज्य की सरकार में मंत्री का पद भी सम्मिलित है।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 194

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 194 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 194 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 195

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 195 में 'a declaration' इन शब्दों के स्थान पर 'an affirmation or oath' ये शब्द रख दिये जायें।''

यह बहुत औपचारिक संशोधन है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 195 में 'a declaration' इन शब्दों के स्थान पर 'an affirmation or oath' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 195 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 195 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 196

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 196 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'196. *किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि-वृत्ति करने का प्रतिषेध*—कोई व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के न्यायाधीश के पद पर प्रारम्भ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र के किसी रह चुके व्यक्ति द्वारा न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत या न्यायालयों में अथवा कार्य न करेगा।''

यह केवल भाषा का ही फेरफार है।

(संशोधन संख्या 87 और 2627 से 2631 तक पेश नहीं किये गये।)

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहकाः** डा. अम्बेडकर ने अभी जो संशोधन पेश किया है उसे देखते हुए मेरा संशोधन (संख्या 2632) अपेक्षित नहीं है।

(संशोधन संख्या 2633 से 2637 तक पेश नहीं किये गये।)

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 196 में, ''within the territory of India' इन शब्दों के स्थान पर ''within the jurisdiction of that High Court' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मुझे कोई वक्तृता देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह संशोधन स्वयं स्पष्ट है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मस्विदा समिति के सभापति के समक्ष संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 को पेश किया है। मेरे विचार में संशोधित अनुच्छेद से भी उन व्यक्तियों पर बहुत ज्यादा प्रतिबंध लग जाते हैं जो कि उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद धारण कर चुके हों। हमने यह सोचा था कि कोई व्यक्ति लम्बी कालावधि के लिये या बहुत छोटी कालावधि के लिये भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त हो सकता है। मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर के संशोधन से यह संभावना नहीं मिट जाती कि कोई व्यक्ति कुछ मासों के लिये ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण करे या उस रूप में कार्य करे। मान लीजिये, एक व्यक्ति कुछ मासों के लिये उस पद पर रहता है, छः मासों या नौ मासों के लिये, क्या हमारा उद्देश्य उस पर भी निर्बन्धन लगाना है, जोकि थोड़े से समय के लिये अस्थायी न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो? क्या हम उसे किसी न्यायालय में ही नहीं, वरन् भारत के प्रदेश में किसी प्राधिकारी के समक्ष भी वकालत करने या कार्य करने से रोकना चाहते हैं? यह मेरी समझ में नहीं आता कि किसी व्यक्ति को, जो थोड़े से समय के लिये उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में बैठ चुका है, समस्त भारत के किसी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष पेश होने से क्यों रोका जाये। जैसा कि मेरे मित्र सरदार हुकमसिंह ने सुझाव दिया है इसमें कुछ युक्तिसंगत बात होगी, यदि उस न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय में, जहां वह पद धारण कर चुका है, पेश होने से रोका जाता या उसके क्षेत्राधिकार में, या उसके अधीन किसी न्यायालय में पेश होने से रोका जाता। किन्तु मेरे विचार में यह पूर्ण सांविधानिक निषेध अनावश्यक है और मैं कह सकता हूं, अलोकतंत्रात्मक है। मैं अपने मित्र सरदार हुकमसिंह के संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि सदन इस पर गम्भीर रूप से विचार करेगा और अनुच्छेद तदनुसार संशोधित हो जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद के विषय में मुझे अपने माननीय मित्र श्री कामत की वक्तृता पर बहुत आश्चर्य है। इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन होना चाहिये। वास्तव में मैं तो यह समझता हूं कि इस संविधान के आरम्भ होने के पश्चात्, ये शब्द भी हटा दिये जाने चाहिये। मैं नहीं समझता कि ये शब्द क्यों रखे जायें। प्रत्येक व्यक्ति को, जो न्यायाधीश रह चुके, वकालत न करने देना चाहिये। आप अब जो निषेध लगा रहे हैं उसके पीछे बहुत युक्तियुक्त आधार है। वास्तव में ब्रिटेन में ऐसा कोई व्यक्ति वकालत नहीं कर सकता जो कि न्यायाधीश-मंडली में रह चुका हो। यह तो सुविख्यात सिद्धांत है। यह भी सुविदित है कि एक बार जब कि लार्ड वर्कनहैड और कुछ अन्य व्यक्ति फिर वकालत आरम्भ करना चाहते थे, तब लोकमत इतना विरुद्ध था कि उन्होंने

अपने संकल्प को पूरा करके वकालत करने का साहस ही नहीं किया। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों होना चाहिये। सर्वप्रथम उच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा ऐसी होनी चाहिये कि कोई पूर्ववर्त्ती न्यायाधीश पुनः वकालत आरम्भ न करे। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पास चाहे धन न हो पर उसका सम्मान किसी से भी अधिक होता है। अतः यदि वह पुनः वकालत आरम्भ करेगा तो उसके पद की प्रतिष्ठा गिर जायेगी। इसी कारण जो व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुके उसे वकालत पुनः आरम्भ नहीं करनी चाहिये। मैं तो और भी आगे बढ़ना चाहता हूं। मैं तो यह कहता हूं कि जो न्यायमंत्री रह चुका हो उसे भी वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। मैंने कुछ अधिवक्ता देखे हैं जो न्यायमंत्री रह चुके हैं पर पुनः वकालत आरम्भ करके अपने पद की प्रतिष्ठा को घटाते हैं। शायद अपने पद पर रहते हुए उन्होंने मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों के साथ विशेष सम्बन्ध बना लिये होंगे, क्योंकि उन्हें पता था कि शायद उन्हें फिर वकालत करनी पड़ जाये। इस बात की अनुमति नहीं होनी चाहिये।

यह कहा गया है कि अस्थायी न्यायाधीशों को वकालत की मनाही नहीं होनी चाहिये। मुझे आशा है कि अनुच्छेद 198 और 199 को इस प्रकार संशोधित कर दिया जायेगा कि हमारे उच्च न्यायालयों में अस्थायी न्यायाधीश रहेंगे ही नहीं और जो भी न्यायाधीश मंडली में एक बार नियुक्त हो जायेंगे वे संविधान के अनुसार निश्चित कालावधि के लिये, वहीं रहेंगे। अतः अस्थायी न्यायाधीशों को वकालत न करने से रोकने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः यह बहुत अच्छा उपबंध है कि एक बार जो न्यायाधीश मंडली में पहुंच जायें उसे फिर वकील मंडली में शामिल नहीं होना चाहिये। मुझसे पूछा जा सकता है कि इसके विरुद्ध क्या क्रियात्मक कारण है। सर्वप्रथम, जो व्यक्ति न्यायाधीश रह चुका हो और वकालत आरम्भ करना चाहेगा, वह अधिक मुवक्किलों की सम्भावना की आशा करेगा। कई मुवक्किल उसकी ओर आकृष्ट होंगे, जो कि अन्य वकीलों के प्रति अन्याय होगा। यह भी सम्भव है कि वह सम्पर्क बनाने का प्रयत्न करे। यह कोई अच्छी बात नहीं होगी यदि वकालत पुनरारम्भ करके वह मुवक्किलों पर यह कह कर प्रभाव डाले कि मुख्य न्यायाधिपति उसका मित्र है। इन कारणों से मेरे विचार में उच्च न्यायालय के एक निवृत न्यायाधीश को पुनः वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। उसे अन्य उच्च न्यायालयों में भी वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। मैं मानता हूं कि उसे पूरी निवृत्ति वेतन मिलना चाहिये, ऐसी राशि जो उसके वेतन के लगभग समान ही हो, जिससे कि वह उस पद की प्रतिष्ठा बनाये रख सके। किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता बनाये रखने के लिये यह अपेक्षित है कि हम उसे पूरा निवृत्ति वेतन दें, यह देखते हुए कि हम उसे फिर वकालत करने की अनुमति नहीं दे रहे हैं और कोई पद ऐसा नहीं ढूंढने दे रहे हैं जिससे कि उसकी प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप हो।

डाक्टर अम्बेडकर ने जो संशोधन प्रस्तुत किया है उसके लिये मैं उनका आभारी हूं। मैं तो केवल इन शब्दों को ही हटाना चाहता हूं कि ''संविधान के आरम्भ होने के पश्चात्''। मेरा उद्देश्य यह है कि जो व्यक्ति संविधान के पूर्व भी न्यायाधीश रह चुके हों, उन्हें भी वकालत करने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने का साहस करने पर मुझे क्षमा किया जाये। मैं सामान्य व्यक्ति हूं और इसलिये

[श्री महावीर त्यागी]

यह कुछ अनाधिकार चेष्टा सी दिखाई दे सकती है कि मैं विधि-सम्बन्धी शास्त्रीय बातों पर बोलने लगूं। किसी अवसर पर डाक्टर अम्बेडकर ने मेरे इस कथन पर आपत्ति की थी कि मेरी अमुक भावना है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मुझे अपना मत प्रकट करना चाहिये, भावनाएं नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्यिक लोगों की सम्मति उनकी भावना से भिन्न होती है। मेरे लिये तो भावनाओं और मत का एक ही अर्थ है। मेरा निवेदन है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के विषय में यह बात है कि उनके आसन ईश्वर के आसन है। ग्रामों में लोग ऐसा ही कहते हैं। ग्रामीण कहते है ''न्याय का आसन भगवान का आसन होता है।'' अत: किसी देश में किसी व्यक्ति की सर्वोपरि आकांक्षा यही हो सकती है कि वह उस आसन पर प्रतिष्ठित हो जो भगवान का कहा जाता है। इसको बहुत पवित्र मानते हैं यह वास्तव में न्याय विधि पर निर्भर नहीं करता। यह बहुत विचित्र बात है कि अंग्रेजों ने लोगों के मन में न्याय के विषय में भ्रांति उत्पन्न कर दी है। लोगों की यह धारणा बना दी गई है कि विधि का सच्चा अर्थ निकालना ही वास्तविक न्याय है। यह बात नहीं है। वास्तव में न्याय तो एक अनन्त सत्य है; यह विधि से बहुत उच्च है। इस समय तो वकील यही करते हैं कि वे ईश्वरीय न्याय के स्वतंत्र प्रवाह में बाधा डालते हैं। श्रीमान्, पिछले अनुच्छेद में जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह ऐसी है कि ईश्वरीय गुणों से युक्त जनसामान्य के भी न्यायाधिपति नियुक्त होने की संभावना है। हम सदा वकीलों को ही न्यायाधीश क्यों रखें? मैं नहीं जानता। हम यह पहले से ही क्यों मान लें कि भविष्य में केवल वकील ही न्यायाधीश के पद पर आसीन होंगे? न्यायाधीशों की नियुक्ति के उपबंध में लिखा है कि राष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके, उन्हें नियुक्त करेगा। हम यह क्यों समझ लें कि न्यायाधीश सदा विधि स्नातक ही होगा? मेरे विचार में इसकी बहुत संभावना है कि ऐसे व्यक्ति, जो न्याय करने के लिये अन्यथा बहुत योग्य हों, न्यायाधीश के पदों पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं और अपने जीवन की सर्वोच्च आकांक्षा को पूरी कर सकते हैं यह सोचना गलत होगा कि ज्यों ही एक व्यक्ति जो वकील न हो न्यायाधीश नियुक्त हो जायेगा, त्यों ही उस पद की प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी। मेरा विश्वास यह है कि सामान्य व्यक्ति से उस आसन की गरिमा ही नहीं बढ़ेगी बल्कि उससे वह पद परम पवित्र बन जायेगा। यदि इस उच्च पद से निवृत्त होने के पश्चात् लोगों की सांसारिक धन के लिये आकांक्षा करने की अनुमति दी जाये जब कि वे भगवान का कार्य कर चुके हों, न्याय का कार्य कर चुके हों, तो वे अपने पद का और अपने आप का महत्त्व खो देंगे। श्रीमान्, मैं यह कह देना चाहता हूं कि मैं वकीलों की वृत्ति के ही विरुद्ध हूं। वे कोई मूल्य या धन की उत्पत्ति नहीं करते। वे विधि का ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपनी योग्यता को नीलाम पर या किराये पर लगा देते हैं। श्रीमान्, यदि वकीलों को न्यायाधीश नियुक्त किया जाये और उन्हें निवृत्ति के पश्चात् न्यायालय में वकालत भी करने दी जाये, तो परिणाम यह होगा कि वे 'न्याय' के महान पद का महत्त्व घटा देंगे; वे उन पदों को सीढ़ी मान कर निवृत्ति के पश्चात् वकालत कर अधिक पैसा कमाने का तरीका बनायेंगे। अत: मेरा निवेदन है कि वकीलों को न्याय में न्यायाधीश मंडली से हटने के पश्चात् किसी विधि न्यायालय

में वकालत न करने दी जाये। मैं इस बात के किये आतुर हूं कि न्याय की विद्यमान पद्धति के विषय में अपने विचारों को प्रकट करूं। मुझे भय है मैं कुछ विषयान्तर कर रहा हूं। किन्तु मुझे इतनी छूट दे दी जाये।

***अध्यक्ष:** मुझे प्रसन्नता है कि माननीय सदस्य यह समझ गये हैं कि वे विषयान्तर कर रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** आप भी वकील हैं, श्रीमान् और आप मुझे क्षमा करेंगे जब मैं यह कहता हूं कि वे असली न्याय का महत्त्व कम कर देते हैं, क्योंकि वे दैवी न्याय को मनुष्य द्वारा निर्मित विधि के कृत्रिम मार्ग में से गुजारना चाहते हैं। वकील लोग यही तो करते हैं। सच्चा न्याय विधि या युक्ति के जाल से बद्ध नहीं है। ब्रिटिश विधि-शास्त्र के व्यवहार के अनुसार न्याय उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जो कि चतुर वकील को कर सके, क्योंकि सच्चाई पर ध्यान नहीं दिया जाता। जिस न्यायाधीश को घटना के विषय में वैयक्तिक ज्ञान हो वह उस मामले का न्याय करने के सर्वथा अयोग्य होता है। जब तक कि वह आगे आकर साक्षी के रूप में गवाही न दे और उसके साथ जिरह न की जाये, तब तक तथ्यों के विषय में उसका ज्ञान निरर्थक है। न्याय की विद्यमान कल्पना मुझे अच्छी नहीं लगती। इस समय विधि न्यायालय समस्त भ्रष्टाचार, बेईमानी और असत्य के केन्द्र और मूल हैं, अत: न्यायाधीशों के आसन अब भारत में ईश्वर के आसन नहीं है हमारे भावी ढांचे में हैं ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि हमारे न्यायालय अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को प्राप्त करें और विधि के दास या इससे बद्ध न बनें। न्याय सत्य है और विधि अनंत हैं। न्याय यथार्थता है और विधि केवल इसकी अभिव्यक्ति का उपाय मात्र है। जो व्यक्ति एक बार न्यायाधीश हो जाये, उसे सत्यमय आनंद का जीवन व्यतीत करने दिया जाये। एक बार जो न्यायाधीश बन जाये वह सदा न्यायाधीश ही रहेगा। उसे निवृत्ति के पश्चात् अपने निवृत्ति-वेतन से संतुष्ट रहना चाहिए। यदि वकील कभी न्यायाधीश नियुक्त हो जायें तो उन्हें पुन: वकालत नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह निश्चित है कि यदि वे ऐसा करेंगे तो वे अपने पदों का प्रयोग अधिक वकालत के लिये सीढ़ी के रूप में करेंगे।

मैं मूल प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री कामत की इस बात से सहमत हूं कि यह परन्तुक इतना व्यापक और सख्त है कि हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। वर्तमान स्थिति के अनुसार उच्च न्यायालयों के निवृत्त न्यायाधीशों को उस न्यायालय में तथा उसके अधीनस्थ न्यायालयों में वकालत नहीं करने दी जाती। इससे अधिक कोई वर्जन नहीं है। मैं पूछना चाहता हूं कि हमारा अनुभव क्या है? हम यह परिवर्तन क्यों करना चाहते हैं? क्या इस उपबंध में कोई त्रुटियां दिखाई दी हैं? क्या इससे कोई हानि हुई है? यदि ऐसा नहीं है तो मैं नहीं समझता कि उसमें कोई परिवर्तन क्यों किया जाये। क्या निवृत्त न्यायाधीशों से वकीलों की बाढ़ आ गई है? नहीं, ऐसी कोई बात नहीं हुई है और न हो ही सकती है, क्योंकि वकालत में सफलता पाना ऐसी आसान बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति उसमें हाथ डाल सके। प्रतिष्ठा का प्रश्न भी उठ सकता है। मैं यह समझ सकता हूं कि जो व्यक्ति न्यायाधीश मंडली में बैठ चुका हो उसे उसी

[श्री बी.एम. गुप्ते]

न्यायालय में वकालत शुरू नहीं करनी चाहिये। किन्तु इसके अतिरिक्त क्या यह सत्य है कि आज कोई शिष्ट विचारों का व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता, क्योंकि प्रस्तावित प्रतिषेध लागू नहीं है? इसके विपरीत उस पद की प्रतिष्ठा इतनी उच्च है कि बहुत योग्य वकील इसे स्वीकार करने और इसकी आकांक्षा करने के लिये तैयार हैं। अत: मेरा निवेदन है कि इस प्रश्न का उत्तर 'ना' ही हैं। तब यह बात उठ सकती है कि शायद निवृत्त न्यायाधीश न्यायालय में अनुचित प्रभाव का प्रयोग करे। उस हद तक मैं मानता हूं कि प्रतिषेध समूचे प्रदेश भर में सब अधीनस्थ न्यायालयों पर लागू होना चाहिये। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उसे उच्चतम न्यायालय में भी आने की मनाही हो। उच्चतम न्यायालय किसी न्यायालय के अधीन नहीं है। उसे अन्य उच्च न्यायालयों में वकालत करने से भी नहीं रोकना चाहिये। अत: मेरा निवेदन है विद्यमान प्रणाली को बदलने का कोई कारण नहीं है।

मुझे कहा जा सकता है कि इंग्लिस्तान में जो पद्धति है उससे यह सिद्ध होता है कि इस समय जो नई पद्धति बनाई जा रही है। वह ठीक है किन्तु, मैं पूछता हूं कि जब हमारे पास अपना अनुभव है तो फिर इंग्लिस्तान या अमरीका या रूस में हम क्यों जायें? मेरा निवेदन है कि हमारे अनुभव से सिद्ध होता है कि यह परिवर्तन ठीक नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह परिवर्तन केवल अनावश्यक है; यह अवांछनीय है। मस्विदा समिति ने अनुच्छेद 193 के नीचे एक नोट में लिख दिया है: 'इसका परिणाम यह है कि वकीलों में से सर्वोत्तम व्यक्ति बहुधा न्यायाधीश बनने से इंकार कर देते हैं, क्योंकि 60 वर्ष की विद्यमान आयु सीमा के अंतर्गत उन्हें पूरा निवृत्ति वेतन पाने का समय नहीं मिलेगा।'' अत: इस आयु सीमा के कारण सर्वोत्तम व्यक्ति नहीं आते हैं मस्विदा समिति ने इसे स्वीकार किया है। फिर समिति ने यह प्रस्ताव किया है कि वेतन तथा निवृत्ति वेतन घटा दिये जायें। मैं समझता हूं कि श्री महावीर त्यागी ने ठीक कहा है कि यदि इंग्लिस्तान के समान पर्याप्त निवृत्ति वेतन हो तो प्रश्न ही नहीं उठता; किन्तु मस्विदा समिति ने वेतन घटाने का सुनिश्चित सुझाव दिया है। मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये। किन्तु यह वेतन कम करने का सुझाव तो है ही, इसके साथ यह प्रतिषेध भी है कि वे कहीं वकालत नहीं करेंगे। इन सब बातों का इकट्ठा प्रभाव क्या होगा? मेरा निवेदन है कि परिणाम यह होगा कि उच्च न्यायालय के या अधीनस्थ न्यायालयों के वकीलों में सर्वोत्तम व्यक्ति पद को स्वीकार करने के लिये तैयार न होंगे। मैं चोटी के वकीलों के हितार्थ इस पर बल नहीं दे रहा हूं। वे अपनी चिंता स्वयं कर सकते हैं। उन्हें हमारी सहानुभूति या कृपा की अपेक्षा नहीं। उनकी तो शानदार वकालत चलेगी। किन्तु इन सब बातों का हमारी न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर क्या प्रभाव होगा? यही समस्या है। चोटी के व्यक्तियों के न मिलने पर, हमें कम योग्यता के लोगों को चुनना होगा और जिसकी वकालत नहीं चली हो उन्हें न्यायाधीश बना दिया जायेगा। या अन्यथा सारे उच्च न्यायालय में जिला न्यायाधीश तथा अधीनस्थ न्यायाधीश ही भर जायेंगे। मैं आप से पूछता हूं कि क्या यह अभीष्ट है? हम सदा न्यायपालिका की स्वाधीनता के

लिये शोर करते रहे हैं किन्तु यह बात इतना उपबंध ही कर देने से पूरी नहीं हो जाती कि एक न्यायाधीश को तब तक अपने पद से हटाया नहीं जा सकता जब तक कि विधान मंडल के सदन समावेदन पेश न करें, या कि उसके भत्ते तथा वेतन राज्य के राजस्व पर भार होंगे। न्यायपालिका इसी प्रकार स्वतंत्र हो सकती है कि उनकी सेवा की शर्तों को ऐसा बना दिया जाये कि सच्चे स्वतंत्रात्मा व्यक्ति उन पदों पर आकृष्ट हों। मेरा निवेदन है कि स्वतंत्र उन्नतिशील व्यक्ति आकृष्ट नहीं होंगे यदि हम ऐसा पूर्ण प्रतिबंध रख देंगे। यह कहा जा सकता है कि सर तेज बहादुर सप्रू इसके पक्ष में थे। हो सकता है सप्रू का नाम सम्माननीय है और उनके विचारों पर हमें सादर विचार करना चाहिये; किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके गुणावगुण पर ध्यान दिये बिना ही हम उनके विचारों पर अंधविश्वास कर लें। ऐसा करने का अर्थ यह होगा कि हम मृत्यु के पश्चात् उन्हें तानाशाह का पद दे देते हैं, जिससे उन्हें स्वयं घृणा होती।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव का समर्थन करने वाले किसी सदस्य ने सर तेज बहादुर सप्रू के नाम का प्रयोग नहीं किया था। माननीय सदस्य उनका नाम बीच में ले आते हैं और उनके कल्पित मत की आलोचना आरम्भ कर देते हैं मेरे विचार में यह ठीक नहीं है।

***श्री बी.एम. गुप्ते:** श्रीमान्, मैं युक्ति का पूर्वाभास कर रहा हूं। खैर, मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि हमें इस प्रस्ताव के समर्थन में सब संगत युक्तियों पर विचार करना चाहिये। और हम इस प्रकार विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि प्रस्तावित उपबंध ऐसा नहीं है कि इन अत्यंत महत्त्वपूर्ण पदों पर उपयुक्त व्यक्ति को आकृष्ट कर सकें। अत: मेरा निवेदन है कि यह विचार करने योग्य बात है कि क्या हम इसे उसी रूप में रहने दें जिस रूप में कि यह पेश किया गया है।

***एक माननीय सदस्य:** अब प्रश्न पर मत ले लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि अभी इस पर आधा दर्जन सदस्य और बोलना चाहते हैं। मैंने देखा है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय संबंधी अनुच्छेदों पर वाद-विवाद करते समय बहस को लम्बा करने की ओर झुकाव होता है, चाहे वाद-विवाद अनावश्यक ही हो। मैं सदस्यों से कहना चाहता हूं कि केवल वाद-विवाद के ही लिये वाद-विवाद न करें, जैसा कि मैं अनुभव करता हूं, हम कभी-कभी करते हैं। मेरे विचार में अच्छा हो यदि हम इस अनुच्छेद पर मत लेना आरम्भ करें। सदन के समक्ष दोनों पक्षों के विचार रखे जा चुके हैं।

प्रश्न यह है:

''कि अब प्रश्न पर मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका:** मैं माननीय प्रस्तावक का ध्यान संशोधन संख्या 2627 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसमें लिखा है कि कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो' किसी न्यायालय के समक्ष वकालत करने का अधिकारी नहीं

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

होना चाहिये। इस समय कई उच्च न्यायालयों में बहुत से अस्थायी न्यायाधीश हैं। ज्योंही यह संविधान लागू होगा...

***अध्यक्ष:** मैं मत लेने वाला हूं और आप बोलना आरम्भ कर देते हैं।

(कुछ माननीय सदस्य बोलने के लिये खड़े हुए।)

***अध्यक्ष:** मैं समाप्ति प्रस्ताव पर पुन: मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** डाक्टर अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि कुछ कहना आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** मैं पहले सरदार हुकमसिंह के संशोधन पर मत लेता हूं। यदि वह स्वीकृत हो जाये तो डा. अम्बेडकर का संशोधन उससे संशोधित हो जायेगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 196 में 'within the territory of India' इन शब्दों के स्थान पर 'within the jurisdiction of that High Court' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 196 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'196. *न्यायाधीश के पद पर रह चुके व्यक्ति द्वारा न्यायालयों में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि वृत्ति करने का प्रतिषेध*—कोई व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारम्भ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत का कार्य न करेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 196-क

(संशोधन संख्या 2639 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** ऐसा ही एक संशोधन संख्या 1870 पेश किया गया था जिस पर लम्बी बहस हुई थी और वह स्थगित कर दिया गया था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 196-क भी स्थगित कर दिया जाये। ऐसा ही एक अनुच्छेद (103 क) स्थगित किया गया था।

***अध्यक्ष:** मैं सहमत हूं। फिर यह अनुच्छेद स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 197

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 197 भी स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं सहमत हूं। यह अनुच्छेद भी स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 198

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 198 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'198. *कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति*—जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त हो अथवा जब मुख्य न्यायाधिपति अनुपस्थिति या अन्य कार्य से अपने पद के कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो तब न्यायालयों के अन्य न्यायाधीशों में से एक जिसे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये नियुक्त करे, उस पद के कर्त्तव्यों का पालन करेगा।' ''

(संशोधन संख्या 2649 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, संशोधन संख्या 1650 डा. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है, क्योंकि वह खंड (2) के संबंध में है। डा. अम्बेडकर का संशोधन सारांश में वही है; इससे खंड (2) हट जाता है और केवल खंड (1) रह जाता है।

***डा. पी.के. सेन:** मैं उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 2651, 2652 और 2653 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 198 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'198. *कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति*—जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त हो अथवा जब मुख्य न्यायाधिपति, अनुपस्थिति या अन्य कारण से अपने पद के कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो तब न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से ऐसा एक जिसे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 198 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 198 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 199

***अध्यक्ष:** कुछ संशोधन ऐसे हैं जो अनुच्छेद को हटाने के विषय में हैं। मैं उन्हें संशोधन नहीं मानता। संशोधन संख्या 2656 वाक्य-रचना संबंधी है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 199 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 199 संविधान में से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 200

(संशोधन संख्या 2657 पेश नहीं किया गया।)

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 200 में, ''The Chief Justice of a High Court' (उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति) इन शब्दों के स्थान पर 'The President' (राष्ट्रपति) ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन पर, श्रीमान् मैं एक और संशोधन पेश करना चाहता हूं और वह यह है:

> ''कि अनुच्छेद 200 में, 'at any time' इन शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधित होने के पश्चात्, अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

> ''इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, किसी व्यक्ति से, जो उस न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना कर सकेगा तथा इस प्रकार प्रार्थिक प्रत्येक व्यक्ति को, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के काल में उस न्यायालय के न्यायाधीश के सब क्षेत्राधिकारों, शक्तियों और विशेषाधिकारों का हक होगा, किन्तु वह अन्यथा उस न्यायालय का न्यायाधीश न समझा जायेगा।''

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या आप परन्तुक को छोड़ रहे हैं?

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं अभी वहां तक नहीं पहुंचा हूं। मेरे लिये उसे पढ़ना आवश्यक नहीं है। अभी तो मैं अनुच्छेद 200 की प्रथम कंडिका के संशोधन पर ही बोलना चाहता हूं। परन्तुक को हटाने के प्रश्न को मैं बाद में लूंगा।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में वापस बुलाया जा सकता है, यदि मुख्य न्यायाधिपति उसे वापस बुलाना अपेक्षित समझे। अब निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में बैठने के लिये पुन: बुलाना लगभग नई नियुक्ति के ही समान है, चाहे वह थोड़े ही समय के लिये हो, और क्योंकि नियुक्त-कर्त्ता प्राधिकारी स्वयं राष्ट्रपति है, अत: मेरे विचार में, यह उचित और वांछनीय है कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से ऐसी प्रार्थना करने से पूर्व राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त कर ले। इस समय इस अनुच्छेद में ये शब्द हैं:

> ''कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय किसी व्यक्ति से...प्रार्थना कर सकता है...''

अर्थात् राष्ट्रपति ने बिना पूछे ही। यह उचित प्रतीत नहीं होता। अतएव, मेरे विचार में, श्रीमान्, मेरा संशोधन अवश्य स्वीकार हो जाना चाहिये, जिससे कि किसी निवृत्त न्यायाधीश को, राष्ट्रपति

[श्री जयपतराय कपूर]

की लिखित अनुमति अग्रिम में प्राप्त किये बिना, वापस न बुलाया आ सके। अब, श्रीमान्, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी है जो इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2658 और 2659 के प्रसंग से, अनुच्छेद 200 में, परन्तुक हो हटा दिया जाये।''

परन्तुक यह है:

> ''परन्तु जब तक पूर्वोक्त कोई व्यक्ति उस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने तथा कार्य करने की सम्मति न दे तब तक इस अनुच्छेद की कोई बात उससे ऐसा करने की अपेक्षा करने वाली न समझी जायेगी।''

मैं इस संशोधन को औपचारिक रूप से पेश नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर इस बात पर विचार करें कि क्या इस परंतुक को रखना अपेक्षित है। मुझे प्रतीत होता है, श्रीमान्, कि यह परन्तुक न केवल अनावश्यक है, किन्तु यह सम्मानयुक्त भी नहीं है। इस प्रकार यह अनावश्यक है। यह धारणा कर ली गई है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश से वापस आकर न्यायाधीश मंडली में बैठने के लिये कह देगा और ऐसा करने से पूर्व उस निवृत्त न्यायाधीश से पूछेगा ही नहीं। हमें यह मान लेना चाहिये कि मुख्य न्यायाधिपति सामान्य ज्ञान वाले विवेकशील व्यक्ति के समान कार्य करेगा और वह किसी व्यक्ति से नकारात्मक उत्तर प्राप्त करने के ही उद्देश्य से प्रार्थना नहीं करेगा। वह नि:संदेह उस निवृत्त न्यायाधीश से बात कर लेगा, उससे पूछ लेगा कि क्या वह न्यायाधीश मंडली में वापस आकर कुछ कृत्य विशेष का निर्वहन करने के लिये तैयार है और तभी वह राष्ट्रपति से उसकी सम्मति मांगेगा। इसलिये, श्रीमान्, यह परन्तुक, मेरे विचार में, नितांत अनावश्यक है। यहां यह परन्तुक रखना गौरव की बात नहीं दिखाई देती, क्योंकि इसका यह अर्थ है कि मुख्य न्यायाधिपति प्रार्थना करेगा और निवृत्त न्यायाधीश को हक होगा कि वह 'ना' कर दे। हां, निवृत्त न्यायाधीश को सदा यह अधिकार है कि वह उस प्रार्थना को स्वीकार करने में अपनी अयोग्यता अभिव्यक्त कर दे। एक बार उससे प्रार्थना करना और बाद में यह पूछना कि वह उस प्रार्थना को स्वीकार करता है या नहीं, उल्टी गंगा बहाने के समान है। अत: यह परन्तुक अनावश्यक भी है और इससे यह अनुच्छेद गौरवहीन भी प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त मैंने एक संशोधन की सूचना दी है जो तृतीय सूची में संख्या 212 है। वह इस प्रकार है:

> ''विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का अधिकार समाविष्ट नहीं होगा।''

मैं इस संशोधन को भी औपचारिक रूप में पेश नहीं कर रहा हूं। किन्तु मैं चाहता हूं कि माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर सदन में यह बात स्पष्ट कर दें कि 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का हक भी समाविष्ट है या नहीं। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि मस्विदा-समिति की यह मंशा कभी नहीं थी कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को

जब उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में सेवा करने के लिये पुनः बुलाया जाये, तब उसे फिर वही वेतन दिया जाये जो कि उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश को मिलता है। मुझे विश्वास है कि उनकी यह इच्छा नहीं है। किन्तु मैं निःसंदेह यह चाहता हूं कि इस मामले में कोई अस्पष्टता न रहने दी जाये और बाद में इस शब्द का ऐसा अर्थ न निकाल लिया जाये कि जिन न्यायाधीशों को निवृत्ति के पश्चात् वापस बुलाया जाता है उन्हें वेतन भी मिलना ही चाहिये। यदि इस शब्द में वेतन पाने का हक भी समाविष्ट हो, तो इससे पिछला अनुच्छेद बेकार हो जाता है, जो अभी हमने पारित किया है और जिसमें लिखा है कि न्यायाधीश साठ पर निवृत्त हो जायेगा, क्योंकि इस अनुच्छेद के अनुसार साठ वर्ष की आयु में निवृत्त होने के पश्चात् भी एक न्यायाधीश को वापस बुलाया जा सकता है चाहे वह इकसठ का हो, चाहे बासठ का और चाहे पिचहत्तर का हो; यदि मुख्य न्यायाधिपति या राष्ट्रपति चाहे तो वे निवृत्त न्यायाधीश को साठ की आयु के बाद भी वापस बुला सकते हैं और उसे उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में कितने भी वर्ष बैठने दे सकते हैं और उसे उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश के समान पूरा वेतन भी दे सकते हैं। यह तो ऐसी बात है जिसे हमें स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होना चाहिये। यदि यह कहा जाये कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति पर भरोसा किया जा सकता है और वे कभी पिछले अनुच्छेद का उल्लंघन करना नहीं चाहेंगे, तो मैं यह कहना चाहता हूं कि जब हम संविधान बना रहे हैं और उसे बहुत विस्तार से बना रहे हैं तो हमें ये बातें मुख्य न्यायाधिपति या राष्ट्रपति की सद्भावना मात्र पर नहीं छोड़ देनी चाहिये, वरन् सब बातों के लिये सुनिश्चित उपबंध रखने चाहिये। हां, मेरा अभिप्राय पूरा हो जायेगा, यदि माननीय डा. अम्बेडकर आज यह स्पष्ट कर दें कि 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का अधिकार समाविष्ट नहीं है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 201 की सूचना डा. अम्बेडकर ने दी है, पर वह बिल्कुल वही है, जो श्री जसपतराय कपूर ने पेश किया है। उस संशोधन को रखने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 200 में 'इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुए' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

***अध्यक्षः** दो संशोधन पेश हो चुके हैं। क्या कोई बोलना चाहता है?

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 200 में वह प्रणाली लिखी है, जिसके अनुसार उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को वापस आकर अस्थायी रूप से न्यायाधीश के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिये कहा जा सकता है। इसमें कहा गया है कि उस उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति ही उससे प्रार्थना कर सकता है कि वह आकर न्यायाधीश मंडली में बैठें यदि वह सहमत हो जाये, तो हां, उसे उस समय के लिये नियुक्त कर दिया जायेगा। मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर का एक संशोधन है, जिसमें कहा गया है कि उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के

[मि. तजम्मुल हुसैन]

स्थान पर राष्ट्रपति को उसे बुलाना चाहिये। मेरे ख्याल में दोनों में बहुत कम अन्तर है, चाहे मुख्य न्यायाधिपति प्रार्थना करे चाहे राष्ट्रपति करे। किन्तु वैयक्तिक रूप से मेरा ख्याल है कि ऐसे मामलों में जबकि एक निवृत्ति न्यायाधीश को वापस बुलाया जाना है, जो संघ के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया था और जिससे कि मुख्य न्यायाधिपति सुपरिचित है, तो कोई कारण नहीं है कि दिन प्रतिदिन के मामले में हम राष्ट्रपति से यह काम करने के लिये कहें। मुख्य न्यायाधिपति प्रत्येक निवृत्त न्यायाधीश को जानता है, उनके गुणावगुण को जानता है। मेरा निवेदन है कि श्री जसपतराय कपूर का यह संशोधन ठीक नहीं है और इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। मेरे विचार में विद्यमान रूप में अनुच्छेद स्वीकार कर लेना चाहिये और मुख्य न्यायाधिपति को ही प्रार्थना करनी चाहिये और राष्ट्रपति को नहीं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर द्वारा संशोधित रूप में, स्वागत करता हूं। परन्तुक को हटाने के विषय में उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं उसका पूरा समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक और अनावश्यक है। मुख्य न्यायाधिपति की प्रार्थना कोई सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति की आज्ञा नहीं है और उसकी प्रार्थना को इस रूप में समझना भी नहीं चाहिये। इस बात को सब जानते हैं। आखिर प्रार्थना तो प्रार्थना ही है। अर्थात् जब मुख्य न्यायाधिपति अपने भूतपूर्व सहयोगी से कोई प्रार्थना करे, तो उस प्रार्थना में आज्ञा का बल नहीं होता और कोई इसे निष्ठाहीनता नहीं समझेगा, यदि वह उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं करता। मेरे विचार में ऐसा अवसर शायद ही आये जबकि इस प्रार्थना की अवहेलना कर दी जाये, यदि वह भूतपूर्व न्यायाधीश रुग्णता अथवा किसी अन्य गंभीर कारण से लाचार न हो जाये तो वह उस पद को सहर्ष स्वीकार कर लेगा। हम देख चुके हैं कि जिला दंडाधीश निवृत्ति के पश्चात् किस प्रकार अवैतनिक दंडाधीश के पद के लिये दौड़ते हैं। अत: इस बात की कल्पना करना बहुत आसान नहीं है जब कि भूतपूर्व न्यायाधीश उस पद को अस्थायी रूप में धारण करने से इंकार कर दे, या जब कि वह बिना मजबूत कारणों के उस पद को स्वीकार करने का अनिच्छुक हो।

मेरे ख्याल में अनुच्छेद 200, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर द्वारा संशोधित रूप में, हमारे लिये बहुत अच्छा है। उसकी सहायता से हम उस घेरे में से निकल जाते हैं जिसमें आज मेरे माननीय मित्र डाक्टर अम्बेडकर ने हमें अपने संशोधन द्वारा डाल दिया है। डा. अम्बेडकर के संशोधन के अनुसार, कोई भी व्यक्ति जो एक दिन के लिये भी न्यायाधीश के पद पर रह चुका हो, वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत करने के अयोग्य होगा अर्थात् वह बिल्कुल बेकार हो जायेगा, जब तक कि सरकार उसे राजदूत या मंत्री प्लेनीपोटेन्शरी न बना दे या वह निर्वाचनों में सफलता पाकर किसी राज्य का मंत्री न बन जाये, क्योंकि प्रोफेसर शाह के संशोधन को सदन ने स्वीकार नहीं किया है। मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीश निवृत्त होने के पश्चात् भी राजदूत या उच्च आयुक्त अथवा कोई मंत्री या ऐसे ही किसी कार्यपालिका के पद की आशा कर सकता है। मैं नहीं समझ पाता कि एक व्यक्ति, जो पांच वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में बैठ चुका

हो और जिसका न्यायिक स्वभाव बन गया हो उसे उच्च आयुक्त या राजदूत का पद कैसे स्वीकार करने के लिये कहा जा सकता है, यह मेरी समझ के बाहर है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य अब उस बात पर बहस कर रहे हैं, जिसे हम पहले ही निबटा चुके हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं तो उसी स्थिति की बात कर रहा हूं, जो प्रोफेसर शाह के संशोधन के अस्वीकृत होने तथा माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के स्वीकृत होने के पश्चात् पैदा हो गई हैं। उस स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय हमारे पास अनुच्छेद 200 है, जिससे हम उन भूतपूर्व न्यायाधीशों को नौकरी देने का उपबंध कर सकते हैं जो काफी अच्छी आयु पर नौकरी छोड़ गये हैं। वे मंत्री या उच्च आयुक्त या राजदूत के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर रहने योग्य है और फिर भी वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता और उस व्यक्ति की, जो सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बन गया था और उस पद को एक वर्ष या ऐसी ही कालावधि के लिये धारण किया था, हम केवल यही सहायता कर सकते हैं कि उसकी अवस्था को विविध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ध्यान में रखें कि ऐसे भूतपूर्व न्यायाधीशों को कार्य देने का जब भी अवसर आये, तो उन्हें याद किया जाये और उनसे सेवा करने के लिये प्रार्थना की जाये। अत: मैं इस उपबंध का स्वागत करता हूं, क्योंकि इसमें कोई आयु-सीमा नहीं है; केवल यदि भारत के विविध उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपति अपने भूतपूर्व सहयोगियों का ध्यान रखेंगे और प्रत्येक अवसर पर उन्हें काम पर लगाने का प्रयत्न करेंगे, तो भूतपूर्व न्यायाधीशों की नौकरी दिलाने की समस्या कम से कम कुछ हद तक तो हल हो ही जायेगी।

मैं एक और बात भी कहना चाहता हूं, जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। क्या उन भूतपूर्व न्यायाधीशों को, जिनसे कि न्यायाधीशों के रूप में कार्य करने के लिये कहा जायेगा, कोई उपलब्धियां मिलेंगी? अनुच्छेद में लिखा है कि उन्हें उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। क्या इस 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन या उपलब्धियां या पारिश्रमिक समाविष्ट है? मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वे अवैतनिक न्यायाधीश होंगे या वेतनभोगी न्यायाधीश होंगे, क्या वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश मंडली के अन्य न्यायाधीशों के समान पद-प्रतिष्ठा से युक्त होंगे और क्या उन्हें कोई वेतन मिलेगा या नहीं, और क्या उनके पद की कोई अवधि है या वे दो वर्ष से अधिक किसी कालावधि के लिये पद धारण कर सकते हैं? क्योंकि एक अनुच्छेद में मैंने देखा है कि पहले यह विचार था कि किसी भी दशा में एक अस्थायी न्यायाधीश को दो वर्ष से अधिक समय के लिये नियुक्त नहीं किया जायेगा। इस बात पर स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मैं यह भी जानना चाहता हूं कि उनका पद-नाम क्या होगा, क्या वे अपने कार्य-काल में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश कहलायेंगे या नहीं? किन्तु अनुच्छेद में लिखा है कि वे न्यायाधीश के रूप में बैठने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिये उस न्यायालय के न्यायाधीश न समझे जायेंगे। उनका पद-नाम क्या होगा, क्या वे उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होंगे, अथवा

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

उनका कोई पद-नाम नहीं होगा और उनसे केवल सात-आठ दिन काम करने के लिये प्रार्थना की जायेगी? मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर इन दो बातों का स्पष्टीकरण करेंगे, अर्थात्, उनका पद-नाम क्या होगा, उनका वेतन कुछ होगा या नहीं और यदि होगा तो कितना और उनकी पदावधि क्या होगी।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस अनुच्छेद के वाद-विवाद में भाग लेने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी, क्योंकि श्री जसपतराय कपूर और श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने जो वक्तृताएं दी हैं, उनके कारण मुझे बोलना पड़ रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि संविधान में अनुच्छेद 200 को रखने के समूचे अभिप्राय और उद्देश्य के विषय में ही भ्रांति हो गई है। ऐसा समझा जाता है कि इस अनुच्छेद का उद्देश्य उस अनुच्छेद को अवैध बनाना है, जो इस सदन ने पहले ही पारित कर दिया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अनिवार्यत: साठ वर्ष की आयु में निवृत्त हो जायेंगे। यह माना जाता है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति, अनुच्छेद 200 में प्रदत्त शक्तियों के अधीन कार्य करते हुए, एक निवृत्त न्यायाधीश से, जो कि उसका मित्र या कृपापात्र हो, कह सकता है कि वह आकर न्यायाधीश बन जाये और उसे बहुत समय के लिये वहां रख सकता है। श्री चौधरी को यह संदेह है कि यह कालावधि दो वर्ष या अधिक भी हो सकती है, अर्थात् एक न्यायाधीश को, जो कि साठ वर्ष की आुय पर निवृत्त हुआ हो, दो वर्ष पश्चात्, जब वह 62 वर्ष का हो, वापस बुलाया जा सकता है और उसे एक-दो वर्ष या अधिक समय के लिये रखा जा सकता है। नि:संदेह यदि यही इसका आशय है, तो माननीय सदस्यों ने जो कुछ कहा है, वह बहुत कुछ ठीक है। किन्तु मैं बहुत सम्मान से कह सकता हूं कि इस अनुच्छेद का यह उद्देश्य नहीं है और मस्विदा समिति का यह उद्देश्य नहीं हो सकता।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** प्रश्न यह है कि क्या इस अनुच्छेद का यह अर्थ भी निकाला जा सकता है या नहीं?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** यह अनुच्छेद इसलिये रखा गया है, जिससे कि मुख्य न्यायाधिपति के लिये यह संभव हो सके कि वह यहां वह प्रणाली लागू कर सके, जो कि बहुत समय से इंग्लिस्तान और अमरीका में प्रचलित है। वहां निवृत्त न्यायाधीशों को वापस बुलाकर न्यायालय में 6 मास या 8 मास भी नहीं रखा जाता। केवल किसी विशेष मामले के या कठिन और महत्त्वपूर्ण मामलों के विनिश्चय के लिये मुख्य न्यायाधिपति उनको सहायता के लिये बुलायेगा, जबकि यह समझा जाये कि उन व्यक्तियों का, जो कि निवृत्त हो गये हैं किन्तु उपलब्ध हैं, परिपक्व अनुभव और विशेष ज्ञान बहुत लाभदायक रहेगा। इंग्लिस्तान में एक निवृत्त न्यायाधीश को जब इस प्रकार बुलाया जाता है, तो उसे कोई वेतन नहीं मिलता। उसे केवल थोड़ा सा भत्ता मिलता है, जो प्रतिदिन दो गिन्नी तथा सफर खर्च होता है—लगभग 85 रुपये प्रतिदिन, जो इस सदन के सदस्यों को सदन में बैठने पर मिलता है। निवृत्त न्यायाधीश के लिये 6 मास के लिये या अधिक समय के लिये न्यायालय के

नियमित सदस्य के रूप में सेवा करना अपमानजनक समझा जाता है और यह बहुत ही अनुचित है। यह तो सोचा ही नहीं जा सकता कि न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति न्यायाधीश मंडली में अपने ''कृपापात्रों'' को वापस लाने के लिये इस उपाय का आश्रय लेगा, जिससे कि वह किसी वाद में विशेष विनिश्चय कराना चाहता हो जब कि वह यह देखें कि उसके अन्य सहयोगी उसकी इच्छानुसार विनिश्चय न करते हों। ऐसी बात तो कल्पनातीत है। नि:संदेह, अनुच्छेद 200 का यह उद्देश्य नहीं हो सकता। इंग्लिस्तान में सुप्रसिद्ध न्यायाधीश, उदाहरणार्थ लार्ड डार्लिंग से 82 वर्ष की आयु पर एक विशेष मुकदमे में आने के लिये कहा गया था, जिसमें विधि के कठिन प्रश्न उठ गये थे और विधि की उस शाखा में उनकी योग्यता तथा विशेष ज्ञान से लाभ उठाना अपेक्षित समझा गया था। उस वाद विशेष या वादों को निबटाने के पश्चात् न्यायाधीश पुन: निवृत्ति अवस्था में चले जाते हैं। वे लंदन आते हैं, कुछ समय के लिये वहां ठहरते हैं और ढाबे का व्यय पूरा करने के लिये थोड़ा भत्ता लेते हैं। दस वर्ष पूर्व उन्हें दो गिन्नी प्रतिदिन और टैक्सी व्यय मिलता था जो कुछ 12 शिलिंग या तीस चालीस रुपये प्रतिदिन पड़ता था, अधिक नहीं।

न्यायाधीश भी इसे एक सम्मान की बात समझता है कि मुख्य न्यायाधिपति समझता है कि यद्यपि वह निवृत्त हो गया है, पर मुकदमों के विनिश्चय में उसकी योग्यता लाभप्रद होगी। अत: वह हर्षपूर्वक अपनी सेवाएं न्यायालय को समर्पित करता है। लार्ड चांसलर सदस्यों को न्यायिक समिति में बैठने के लिए बुलाता है और मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय में निवृत्त न्यायाधीशों की सहायता मांगता है। मैं समझता हूं कि यही इस अनुच्छेद का उद्देश्य है और जो आशंकायें तथा भय व्यक्त किये गये हैं वे सब निराधार हैं। इसी प्रकार यह अवांछित होगा कि जब काम का ढेर हो जाये तो मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश को 63, अथवा 65 या 67 अथवा अधिक आयु पर बुलाकर उस एकत्र काम को समाप्त करने के लिये कहे। यह निवृत्त-न्यायाधीश के लिये भी अत्यन्त अपमानजनक होगा तथा मुख्य न्यायाधिपति के लिये ऐसा करना बहुत अनुचित होगा। यदि न्यायाधीश को कोई भत्ता नहीं मिलेगा, तो उच्च न्यायालय में अवैतनिक न्यायाधीश रखने की प्रणाली चल पड़ेगी, जैसे कि वे शानदार आनरेरी मजिस्ट्रेट होते हैं और उस पद्धति के समस्त अवगुण आ जायेंगे। यह उद्देश्य नहीं है। संविधान में इस अनुच्छेद को रखने का यह उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता। उद्देश्य यह है कि भारत में पुरानी प्रथा को प्रचलित किया जाये जो इंग्लिस्तान और अमरीका में कई वर्षों से प्रचलित है और जिसका बहुत कम आश्रय लिया जाता है—वर्ष में एक-दो ही बार कुछ सप्ताह के लिये जबकि कठिनाई और महत्त्व के विवादों का या किसी विवाद विशेष का निर्णय करना हो। अनुच्छेद में यही कहा गया है। अत: मेरा निवेदन है कि यह अनुच्छेद, विद्यमान रूप में, बिना संशोधनों के, स्वीकृत हो जाना चाहिये और जैसी आशंकायें प्रकट की गई हैं, वैसी आशंकायें सदस्यों को नहीं रखनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं। मुझे भय है कि यदि हम इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में, डा. अम्बेडकर के संशोधन सहित या मेरे मित्र श्री कपूर के संशोधन सहित स्वीकार कर लें, तो किसी समय इसके ऐसे परिणाम हो सकते हैं, जो यहां एकत्रित बुद्धिमान व्यक्तियों ने नहीं सोचे हैं; मुझे पता नहीं है कि

[श्री एच.वी. कामत]

संसार के किस लिखित संविधान से यह अनुच्छेद लिया गया है। इस अनुच्छेद में न उन परिस्थितियों का वर्णन है, जिनके अंतर्गत न्यायाधीश कार्य कर सकता है और न यह ही लिखा है कि वह किस समय कार्य करेगा। मेरे पंडित मित्र डा. बक्शी टेकचन्द ने कहा है कि न्यायाधीश को केवल एकत्रित कार्य के निबटाने के लिये ही नहीं रखा जायेगा। मैं उनसे सहमत हूं कि यह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपमानजनक बात होगी कि उसे कुछ एकत्रित कार्य को समाप्त करने के लिये बुलाया जाये। यदि वह बात नहीं है तो उसकी योग्यताओं को किस काम में लाया जायेगा? स्पष्टतः मेरे विचार में एक अन्य श्रेणी के विवाद हैं, और वे हो सकते हैं महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्नों के विवाद, वे विवाद जो कि केन्द्र और एककों में या एकक तथा एकक में उठ सकते हैं। यहां जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यह हो सकता है कि कार्यपालिका एक विशेष प्रकार का निर्णय करवाना चाहे और हम यहां यह विनिश्चय पहले ही कर चुके हैं कि न्यायपालिका कार्यपालिका से पूर्णतः पृथक् नहीं होगी। हम बाद में कभी ऐसी कार्यवाही कर सकते हैं, किन्तु...

***डा. पी.एस. देशमुखः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह धारा उच्च न्यायालय के विषय में है और उच्चतम न्यायालय के विषय में नहीं है?

***श्री एच.वी. कामतः** हमने यह रखा है कि न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र नहीं होगी और जब तक ऐसा है, तब तक इस बात की संभावना से हम बच नहीं सकते और इसके विरुद्ध कोई प्रत्याभूति नहीं है कि न्यायपालिका कार्यपालिका की दासी ही होगी: या यदि वह बहुत तीक्ष्ण शब्द है, तो यूं कहिये कि न्यायपालिका कार्यपालिका का अनुसरण करेगी, सब अवसरों पर न सही, पर कुछ अवसरों पर तो ऐसा होगा ही, क्योंकि अब सदन ने प्रोफेसर शाह के इस सुझाव को नहीं माना है कि कार्यपालिका के पद किसी पदासीन न्यायाधीश को नहीं मिलने चाहिये। अतः इस बात की कोई प्रत्याभूति नहीं है कि न्यायपालिका सर्वांग सच्चाई और स्वतंत्रता की भावना से कार्य करेगी।

डा. अम्बेडकर ने दूसरा एक संशोधन रखा है, जिसका आशय यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या कार्यवाहक न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति मुख्य न्यायाधिपति और राष्ट्रपति के बीच विभाजित कर दी जाये। मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति से परामर्श करेगा। इससे यह दुगुना आश्वासन मिल जाता है कि ठीक व्यक्ति को ही बुलाया जायेगा। किन्तु हमें सदा यह विश्वास नहीं हो सकता—वास्तव में यहां हमें किसी को भी विश्वास नहीं हो सकता—कि वे व्यक्ति कितने योग्य होंगे जो भविष्य में इन पदों पर आसीन होंगे और भविष्य में हमारे राज्य के उच्च प्रतिष्ठित व्यक्ति होंगे। जब तक संविधान न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथकत्व और उसकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित नहीं करता, तब तक यदि राष्ट्रपति न्यायपालिका में हस्तक्षेप करना चाहे या यह चाहे कि न्यायपालिका उसके कथनानुसार चले या उसकी इच्छा की दास बन कर रहे, या कार्यपालिका के हाथ की कठपुतली बन कर रहे, तो कुछ विषयों में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति को अपने इंगित पर चला सकता हैं। किन्तु यह भी सर्वथा संभावित है कि वास्तव में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति से कह देगा कि वह अमुक कार्य करे...

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 107 की भाषा भी, जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, इस अनुच्छेद जैसी ही है और उच्चतम न्यायालय में ऐसे ही न्यायाधीशों को आमंत्रित करने के विषय में है, और अब यह सब युक्तियां मुझे प्रसंगानुकूल नहीं दिखती।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या हमने राष्ट्रपति के विषय में इस संशोधन को शामिल कर लिया है?

***अध्यक्षः** हां।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं समझा कि वह शामिल नहीं है मैंने सोचा था कि यह नया संशोधन है जिससे उच्च न्यायालय के कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को बीच में लाया गया हैं। अतः मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, केवल एकत्रित कार्य को ही निबटाने का प्रश्न नहीं है, प्रयुक्त कुछ मामलों को निबटाने का प्रश्न है, जिनमें पारिभाषिक या सांविधानिक प्रश्न निहित हों। कुछ भी हो, मेरा ख्याल है कि जहां तक कार्यकारी न्यायाधीशों का संबंध है, मुख्य न्यायाधिपति सक्षम प्राधिकारी है और उसे राष्ट्रपति से परामर्श करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। जहां तक कार्यकारी कालावधि का संबंध है, डा. बख्शी टेकचन्द ने चार, पांच, छः सप्ताह की चर्चा की है और उन्होंने न्यायाधिपति डार्लिंग का दृष्टांत दिया है। एक और महान् न्यायाधीश, न्यायाधिपति हल्डेन भी थे। किन्तु ऐसे न्यायाधीश बहुत कम हैं और मुझे आशा है कि कार्यकारी न्यायाधीश नियुक्त करने की यह प्रणली इस देश में नहीं चलेगी।

***अध्यक्षः** ''नियुक्ति'' शब्द तो अनुच्छेद में है ही नहीं। नियुक्ति नहीं, वरन् विशेष अवसरों पर प्रार्थना की जायेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद में लिखा है कि वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करेगा। पारिभाषिक रूप में यह चाहे नियुक्त न हो।

***डा. बक्शी टेकचन्दः** उसे 'कार्य करना' है क्योंकि उसे विवादों का विनिश्चय करना है।

***एक माननीय सदस्यः** वह कार्यकारी न्यायाधीश नहीं होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** निःसंदेह वह कार्यकारी न्यायाधीश है। वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करता है और निःसंदेह वह उच्च न्यायालय का कार्यकारी न्यायाधीश हुआ। हमें यहां बाल की खाल नहीं उतारनी चाहिये।

मेरे ख्याल में यदि दस-पंद्रह दिन की ही बात हो, जैसा कि डा. बक्शी टेकचन्द ने हमें बताया है, तो मैं नहीं समझ पाता कि इसमें राष्ट्रपति का प्रश्न ही क्यों उठना चाहिये। मुख्य न्यायाधिपति को इतनी क्षमता है कि वह किसी समय किसी वाद के निपटाने के लिये किसी न्यायाधीश से प्रार्थना कर सकता है। मेरे विचार में राष्ट्रपति को बीच में नहीं आना चाहिये और यह कार्य मुख्य न्यायाधिपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह किसी अवसर विशेष पर किसी निवृत्त न्यायाधीश से न्यायाधीश के रूप में कार्य करने की प्रार्थना कर सके।

[श्री एच.वी. कामत]

अन्ततः श्रीमान्, यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक, प्रयोजनहीन, व्यर्थ और बेकार है। मैं नहीं समझता कि मसविदा-समिति के बुद्धिमान लोगों ने इस परन्तुक को यहां रखना क्यों ठीक समझा है। मैं कह सकता हूं कि शायद संविधान में कुछ व्यर्थ शब्द भरने की सनक में ऐसा किया गया है। किसी भी व्यक्ति को यह काम करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता, जब तक कि हम बेगार-प्रणाली लागू न करें। हमने बेगार को मिटा दिया है और मेरे ख्याल में न्यायाधीशों से तो हम बेगार नहीं लेंगे। यदि न्यायाधीश काम करने के लिये उद्यत हो जाये तो वह मुख्य न्यायाधिपति की प्रार्थना को मान लेगा। अतः यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक और व्यर्थ है और मुझे आशा है कि मसविदा-समिति के बुद्धिमान लोग इस परन्तुक को हटाने के लिये तैयार हो जायेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस खंड के साथ सूचना में कहा गया है कि निवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) और संयुक्त राज्य अमरीका की प्रणाली के अनुसार रखी गई है। यही बात इस धारा को रखने के समर्थन में कही गई है। अमरीका में न्यायाधीशों को लगभग अपने वेतन के बराबर निवृत्ति वेतन मिलता है और इंगलिस्तान में उन्हें अपने वेतन का 80 प्रतिशत निवृत्ति वेतन के रूप में मिलता है, जैसा कि मसविदा-समिति के सभापति ने स्वयं बताया है। यदि निवृत्ति होने के पश्चात् उन्हें न्यायाधीश मंडली में बुलाया जाता है, तो यह उनके लिये धन-लाभ का प्रश्न नहीं है, यह केवल प्रतिष्ठा की बात है और राज्य के लिये कर्त्तव्य के पालन का प्रश्न है। इस खंड का मैं शर्त के साथ समर्थन करता हूं। यदि हम यह भी उपबंध रख दें कि उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों को पूरा वेतन निवृत्ति वेतन के रूप में मिलेगा, या कम से कम 80 प्रतिशत मिलेगा जैसा कि इंगलिस्तान में होता है, तो न्यायाधीश मुख्य न्यायाधिपति की कृपा प्राप्त करना नहीं चाहेंगे, ताकि वह उन्हें न्यायाधीश मंडली में वापस बुला ले। मेरे मित्र बख्शी टेकचन्द ने कहा है कि यह केवल विशेष अवसरों के लिये और विशेष कालावधि के लिये है, किन्तु अनुच्छेद की भाषा से यह अर्थ नहीं निकलता। अनुच्छेद 189 के अंतर्गत हमें कोई अतिरिक्त या अस्थायी न्यायाधीश नहीं रखना हैं। यह बिल्कुल संभव है कि एकत्रित कार्य हो जाये और मुख्य न्यायाधिपति इस उपाय द्वारा निवृत्त न्यायाधीशों को वापस बुला ले और एकत्रित कार्य को निबटाने के लिये कहे। अनुच्छेद में यह नहीं लिखा है कि प्रार्थित व्यक्ति दो या तीन वर्षों के लिये काम नहीं करता रहेगा। वास्तव में मैं तो अनुभव करता हूं कि यह तो न्यायाधीशों को परोक्ष रूप से वापस बुलाने के समान है। मैं तो वैयक्तिक रूप से न्यायाधीशों के लिये अधिक ऊंची आयु रखना पसन्द करता हूं—उच्च न्यायालयों के लिये 66 वर्ष और उच्चतम न्यायालय के लिये सत्तर वर्ष की आयु होनी चाहिये। हम फिर यह कह सकते थे कि इन न्यायाधीशों को बुलाने की आवश्यकता नहीं होगी। आप उन्हें साठ वर्ष की आयु में निवृत्त कर देते हैं और उन्हें वापस बुला सकते हैं। इसका यही अर्थ है कि आप कुल-पोषण और पक्षपात की संभावनाएं पैदा कर रहे हैं। न्यायाधीश यह ध्यान रखेंगे कि वे मुख्य न्यायाधिपति को नाराज न कर दें अन्यथा उनके वापस बुलाये जाने की कोई संभावना नहीं रहेगी। मेरा सुझाव यह है

कि सर्वप्रथम, न्यायाधीशों का निवृत्ति वेतन उनके वेतन के लगभग बराबर या 80 प्रतिशत होना चाहिये और दूसरी बात यह है कि उन्हें विशेष वादों में ही बुलाया जायेगा और कथित कालावधि के लिये ही बुलाया जायेगा। वे परोक्ष रूप से बुलाये गये कार्यकारी न्यायाधीश न हों।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं नहीं समझता था कि इस अनुच्छेद पर इतना लम्बा वाद-विवाद होगा, यह देखते हुये कि ऐसा ही अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय के विषय में पारित हो चुका है। किन्तु क्योंकि बहस हो गई है और कुछ सदस्यों ने मुझसे कुछ सुनिश्चित प्रश्न पूछे हैं, अतः मैं उनका उत्तर देने आया हूं।

मेरे मित्र श्री कामत ने कहा कि उन्हें पता नहीं है कि किसी अन्य देश में अनुच्छेद 200 के समान कोई उपबंध है या नहीं। मुझे विश्वास है कि उन्होंने संविधान का मसविदा पढ़ा नहीं है, क्योंकि स्वयं फुटनोट में लिखा है कि ऐसा ही उपबंध अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन में है। (*श्री कामत द्वारा अश्रोतव्य बाधा*)। वास्तव में अनुच्छेद 200 शब्दशः इंगलिस्तान के उच्चतम न्यायालय अधिनियम की धारा 8 से लिया गया है। भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है। जहां तक उदाहरण का प्रश्न है, मेरा यही उत्तर है।

किंतु, श्रीमान्, उदाहरण के अतिरिक्त भी अनुच्छेद 200 के समान उपबंध रखने के कई कारण हैं। जैसा कि सदन को स्मरण होगा अब हमने अस्थायी या अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में सब उपबंधों को हटा दिया है और इस विषय के खंड संविधान से निकाल दिये गये हैं। उच्च न्यायालय के सब न्यायाधीश स्थायी ही होंगे। मुझे प्रतीत होता है कि यदि आप अस्थायी या अपर न्यायाधीश नहीं रखना चाहते हैं, तो आपको कुछ विशेष कार्य के निबटाने के लिये कुछ उपबंध बनाना चाहिये, जिसके लिये कि कोई अस्थायी न्यायाधीश रखना संभव न हो सके। और इसलिये अनुच्छेद 200 का उपबंध ही अनुच्छेद 196 से (जिसमें कि यह उल्लिखित है कि निवृत्त होने के पश्चात् कोई न्यायाधीश वकालत नहीं कर सकता) संगत होगा। जैसा कि मेरे मित्र डा. टेकचन्द ने कहा है, इस अनुच्छेद के अभिप्राय या प्रयोजन के विषय में काफी भ्रांति या गलतफहमी प्रतीत होती है। इस अनुच्छेद का यह अभिप्राय नहीं है कि परोक्ष रूप से उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों को बुलाया जाये। अतः किसी को इस विषय में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिये।

दूसरा प्रश्न जो मुझसे पूछा गया है परन्तुक के विषय में है। बहुत से व्यक्तियों ने, जोकि इस परन्तुक पर बोले थे कहा कि यह बिल्कुल व्यर्थ और निरर्थक दिखाई देता है। मैं उनसे सहमत नहीं हूं। मैं समझता हूं कि यह परंतुक बिल्कुल आवश्यक है। यदि यह परन्तुक न रखा जाये तो सम्बद्ध प्राधिकारियों को अधिकार होगा कि वे आमंत्रण को अस्वीकार करने वाले न्यायाधीश पर एक प्रकार से शास्ति लगा सकते हैं। यह भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति, जो आमंत्रण को स्वीकार न करे, न्यायालय-अपमान का दोषी ठहराया जा सकता है। हम नहीं चाहते कि न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश के विरुद्ध ऐसी शास्तियां लगे जो कि रुग्णता, अपंगता या अन्य किसी कारोबार में व्यस्त होने के कारण मुख्य न्यायाधिपति के आमंत्रण को स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तुक के पक्ष में यही युक्ति है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या अनुच्छेद 200 में विशेषाधिकार शब्द के कारण निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन के बराबर पूरा वेतन मांगने का अधिकार है। मेरा उत्तर यह है कि इस विषय में निवृत्ति वेतन के जो नियम हैं वे लागू होंगे। इस समय यह नियम है कि जब एक निवृत्त व्यक्ति को किसी सरकारी पद स्वीकार करने के लिये आमंत्रित किया जाता है, तब उसे उस पद का वेतन मिलता है जिसमें से निवृत्ति वेतन घटा दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यही सामान्य नियम है। हो सकता है कि मैं गलती पर होऊं। अस्तु, यह ऐसा मामला है जिस पर निवृत्ति वेतन के नियम लागू होंगे। इसी प्रकार यह मामला भी निवृत्ति वेतन संबंधी नियमों से शासित होने के लिये छोड़ दिया जाये, और हमें इस विषय में अनुच्छेद में कुछ विशेषत: कहना अपेक्षित नहीं है। बहस में जो आलोचना की गई है, उसके विषय में मुझे केवल इतना ही कहना है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या संयुक्त राज्य के संविधान में ऐसा कोई उपबंध है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे समक्ष उसका मजमून नहीं है। संयुक्त राज्य में यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वहां वेतन और निवृत्ति वेतन लगभग एक से हैं।

मैं श्री कपूर के संशोधन संख्या 89 को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं, क्योंकि कुछ लोगों की यह भावना है कि अनुच्छेद 200 का मुख्य न्यायाधिपति दुरुपयोग कर सकता है और अपने मित्र को जो निवृत्त न्यायाधीश हो, अनेक बार बुला सकता है। अत: मैं श्री कपूर के इस सुझाव को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त करके ही निमंत्रण भेजा जाये।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या यह उद्देश्य है कि 'विशेषाधिकार' शब्द का अर्थ निकालने का कार्य संसद पर ही छोड़ दिया जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** शायद इसे परिभाषित करना पड़े। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसद को एक अधिनियम पारित करना होगा, जिसे न्यायपालिका अधिनियम कह सकते हैं, जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों पर लागू होगा और उसमें 'विशेषाधिकार' शब्द को निश्चित और परिभाषित किया जायेगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** किंतु वापस बुलाये गये न्यायाधीश के और स्थायी न्यायाधीश के विशेषाधिकार एक ही होंगे। अनुच्छेद 200 में यही लिखा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, किंतु विशेषाधिकार का अर्थ पूरा वेतन नहीं है।

***अध्यक्ष:** श्री जसपतराय कपूर के संशोधन संख्या 89 को डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। मैं इस पर अब मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 200 में 'at any time' इन शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 2659 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 200 में 'subject to the provisions of this article' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 200 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 200 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 201

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 201 पर कोई संशोधन नहीं है। यदि इस पर कोई भी बोलना नहीं चाहता है तो मैं इस पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''अनुच्छेद 201 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 201 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 202

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 202 पर बहस हो सकती है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'to issue directions or orders in the nature of the writs of *Habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo*

[श्री एच.वी. कामत]

warranto and certiorari' इन शब्दों के स्थान पर 'to issue such directions or orders as it may consider necessary or appropriate' ये शब्द और 'and for any other purposes' इन शब्दों के स्थान पर 'or any other purpose' ये शब्द क्रमशः रख दिये जायें'।''

यदि संशोधन संख्या 2660 स्वीकृत हो जायेगा, तो अनुच्छेद 202 का खंड (1) निम्न प्रकार बन जायेगा:

''इस संविधान के अनुच्छेद 25 में किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन क्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस संविधान के भाग (3) द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिये ऐसे निदेश या आदेश दे सकता है जैसे वह समुचित या अपेक्षित समझे।''

दूसरा भाग तो केवल शाब्दिक है, किन्तु मेरे विचार में यह परिवर्तन आवश्यक है। इस खंड का संबंध भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने से और किसी अन्य प्रयोजन से भी है। यदि 'तथा' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रख दिया जाये, तो आशय बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा, अर्थात्, यह कि उच्च न्यायालय को दोनों के प्रभावित होने पर ही नहीं, वरन् दोनों में से किसी एक कारण से भी आदेश निकालने की शक्ति है। मेरे विचार में सदन को इस संशोधन का दूसरा भाग स्वीकार करने में तो कोई कठिनाई नहीं होगी। मैंने दो पृथक संशोधन भेजे थे, इसीलिये मैं उन पर पृथक-पृथक बोल रहा हूं।

संशोधन के प्रथम भाग के विषय में मेरा विश्वास है कि संक्षिप्तता के निमित और स्पष्टता अथवा सुनिश्चितता को कम किये बिना, हम विविध लेखों के उल्लेख को हटा सकते हैं। न्यायालय को क्षमता होनी चाहिये कि वह जो भी लेख या आदेश, भाग 3 के किसी अधिकार को, अर्थात् मूलाधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये अपेक्षित समझे, निकाल दे। इस लेख का उल्लेख न करने से इस खंड के आशय पर किसी प्रकार बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हम भाग 3 के खंड 25 में पहले ही उन लेखों का उल्लेख कर चुके हैं जो कि विभिन्न मूलाधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये निकाले जा सकते हैं। मुझे स्मरण है कि उस समय डा. अम्बेडकर तथा सदन ने एक संशोधन स्वीकार कर लिया था, जिससे इसमें जरा सा संशोधन कर दिया गया था और यह कहा गया था कि 'उच्चतम न्यायालय को आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बंदी-प्रत्यक्षीकरण आदि प्रकार के लेख भी हैं निकालने की शक्ति होगी।' अथवा कुछ ऐसे ही था; किंतु कुछ भी हो, मुझे विश्वास है कि यह खंड विद्यमान रूप में अनावश्यक और व्यर्थ शब्दाडम्बर से भरा हुआ है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश जानता है कि किसी मामले विशेष में क्या विशेष लेख या आदेश या निदेश निकालने चाहिये। हमें संविधान में यह लिखने की अपेक्षा नहीं है कि विशेष अवसरों पर कौन सा विशेष लेख या आदेश समुचित होगा। काल के क्रम से या विधि दृष्टान्तों के विकास से कुछ अन्य प्रकार के लेखों या आदेशों की उत्पत्ति हो सकती है।

हम इस खंड में उल्लिखित इन विशेष लेखों से ही उच्च न्यायालय को क्यों बांध दें? 'तथा' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखने के संशोधन से आशय स्पष्ट हो जायेगा। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महोदय, मैं औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'in the nature of' इन शब्दों के पूर्व 'including those' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

एक और संशोधन है, जिसे मैं आपकी अनुमति से इस संशोधन पर संशोधन के रूप में पेश करना चाहता हूं, जो कि शाब्दिक ही है और उससे स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। यह संशोधन पर संशोधन इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2661 के प्रसंग से, अनुच्छेद 202 के खंड (1) में, 'or orders in the nature of the writs' इन शब्दों के स्थान पर 'orders or writs including writs in the nature' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन पर संशोधन से इस अनुच्छेद की भाषा वैसी ही हो जाती है, जैसी अनुच्छेद 115 की है, जिसे हम उच्चतम न्यायालय के विषय में पहले ही पारित कर चुके हैं और जैसी अनुच्छेद 25 की हे, जिसमें उच्चतम न्यायालय को मूलाधिकारों के विषय में ऐसी ही शक्तियां दी गई हैं। अत: यह संशोधन बिल्कुल शाब्दिक ही है और मैं सदन से प्रार्थना करूंगा कि वह इसे स्वीकार कर ले। ऐसा करते समय मैं अपने मित्र श्री कामत की बातों के संबंध में एक-दो बातें कहना चाहता हूं। उन्होंने यह सुझाव दिया है कि अनुच्छेद में बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदि लेखों का विशिष्ट उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। बहुत आदर के साथ मैं अपने माननीय मित्र से सर्वथा असहमत हूं। मेरे मतानुसार यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन लेखों के नाम से उल्लिखित किया जाये। हमने अनुच्छेद 25 में मूलाधिकारों के संबंध में भी उनका उल्लेख किया है; और हमने अनुच्छेद 115 में उच्चतम न्यायालय के संबंध में भी उनका उल्लेख किया है और जिन कारणों से उनका वहां उल्लेख किया गया है उन्हीं कारणों से यहां भी उसका उल्लेख होना चाहिये। मैं सदन को स्मरण कराना चाहता हूं कि यही लेख महानतम रक्षण-कवच है जो कि ब्रिटिश न्यायिक प्रणाली ने जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिये अपनाये हैं और यह बहुत आवश्यक है कि वे हमारे संविधान में रखे जाने चाहिये। इस समय प्रेसीडेंसी उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त अन्य उच्च न्यायालयों के पास इनमें से कोई भी शक्ति नहीं है, जैसे कि इलाहाबाद, पूर्वी पंजाब, पटना, नागपुर, उड़ीसा, असम आदि के उच्च न्यायालय हैं। इनमें से कोई भी उच्च न्यायालय उत्प्रेषण लेख नहीं निकाल सकता । बंगाल, बंबई और मद्रास के प्रांतों में भी यह लेख विशेष उनके सामान्य प्रारंभिक क्षेत्राधिकार की सीमाओं के अन्तर्गत ही निकाला जा सकता है। उदाहरणार्थ, मद्रास प्रांत में यदि कोई मुकदमा

[डा. बक्शी टेकचन्द]

त्रिचरापल्ली अथवा मदुरा के न्यायालय में लम्बित है, तो मद्रास के उच्च न्यायालय को लेख निकालने की कोई शक्ति नहीं है। केवल मद्रास नगर या उसके आसपास कुछ मीलों से आने वाले मुकदमों के विषय में ही उच्च न्यायालय को यह शक्ति है। इन सीमाओं के बाहर उसे केवल यूरोपीय प्रजाजनों के विषय में यह शक्ति है। इसका कारण यह था कि इन उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालयों के आज्ञा-पत्रों से प्राप्त होता था और वे उच्चतम न्यायालय इन प्रांतों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय इंगलिस्तान के बादशाह द्वारा निकाले गये आज्ञा-पत्रों द्वारा स्थापित हुए थे, और यह कहा जाता था कि उनका क्षेत्राधिकार केवल प्रेसीडेंसी नगरों तक अथवा ब्रिटिश मूल वंश के प्रजाजनों तक ही सीमित था, चाहे वे प्रजाजन कहीं भी हों। नये संविधान में प्रत्येक उच्च न्यायालय को ये लेख निकालने की शक्ति दी जायेगी और वह उसका प्रयोग अपने समस्त क्षेत्राधिकार में करेगा और इस मामले को संदेह से परे बनाने के लिये यह अपेक्षित है कि ये लेख विशिष्ट रूप से उल्लिखित हों। श्रीमान्, हम जानते हैं कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख इन सब लेखों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस लेख के विषय में, जब तक आपराधिक प्रक्रिया संहिता में धारा 491 जोड़ी नहीं गई थी, तब तक इलाहाबाद, पटना, लाहौर और नागपुर के उच्च न्यायालयों को यह लेख भी निकालने की शक्ति नहीं थी। धारा 491 से यह शक्ति इन उच्च न्यायालयों को आंशिक रूप में मिली थी। अभी हाल ही में पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय में यह प्रश्न उठा था कि क्या धारा 491 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को शक्तियां और प्रक्रिया वही हैं जो कि इस मामले में इंग्लिस्तान के उच्च न्यायालय की हैं। जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान्, यदि एक न्यायाधीश लेख निकालने से इंकार कर दे तो व्यक्ति दूसरे न्यायाधीश के पास जा सकता है, तीसरे के पास, चौथे के पास इस तरह जा सकता है कि जब तक कि वह सारे न्यायाधीशों के पास जा न चुके। पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय में 6-7 मास पूर्व यह प्रश्न उठा था कि क्या किसी व्यक्ति को इसी प्रकार यह अधिकार है कि यह क्रमशः प्रत्येक न्यायाधीश के पास जा सके और वहां यह निर्णय हुआ था कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके पास इंगलिस्तान के उच्च न्यायालय के समान बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के लेख निकालने की शक्ति है। भारत में प्रेसीडेंसी के अतिरिक्त अन्य उच्च न्यायालयों की शक्ति धारा 491 के अधीन है, जिसके अनुसार आप एक ही बार लेख निकाल सकते हैं। इससे पता लग जायेगा कि इन लेखों का नाम लिखना क्यों अपेक्षित है, ताकि कोई संदेह न रहे कि यहां भी इंगलिस्तान में प्रचलित प्रक्रिया और शक्तियां लागू होंगी। मुझे आशा है कि मेरे संशोधन को डा. अम्बेडकर स्वीकार कर लेंगे और संशोधित रूप में अनुच्छेद को सदन पारित कर देगा।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर क्या आप संशोधन संख्या 2663 को पेश करना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्, मैं बख्शी टेकचन्द के संशोधन को स्वीकार करता हूं। मैं नहीं समझता कि कोई उत्तर अपेक्षित है।

***श्री एच.वी. कामतः** 'तथा' के स्थान पर 'अथवा' रखने का एक संशोधन था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इससे अनुच्छेद के सार के विषय में कोई अन्तर नहीं होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इससे आशय में अन्तर पड़ जाता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'to issue directions or orders in the nature of the writs of *habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo warranto* and certiorari' इन शब्दों के स्थान पर 'to issue such directions or orders as it may consider necessary or appropriate' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'and for any other purpose' इन शब्दों के स्थान पर 'or for any other purpose' ये शब्द रख दिये जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2661 के प्रसंग से, अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'or orders in the nature of writs' इन शब्दों के स्थान पर 'orders or writs including writs in the nature' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 202 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 202 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 203

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 203 को स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 203 स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 203-क

(संशोधन संख्या 2673 को पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 204

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 में 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार होगा:

''यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा सकेगा।

व्याख्या–इस अनुच्छेद में, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित किसी राज्य में उस लम्बित मामले के संबंध में अन्तिम क्षेत्राधिकार का न्यायालय भी 'उच्च न्यायालय' में समाविष्ट है।''

***अध्यक्षः** वह मामले को अपने पास मंगा सकता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह नहीं चाहता कि मामले को मंगाना अनिवार्य या आदेशमूलक हो, वरन् कुछ स्वविवेक छोड़ देना चाहिये, और न्यायाधीश चाहे तो उस मामले को मंगाया जा सकता है, किन्तु यह अपेक्षित नहीं होना चाहिये, जैसा कि इस अनुच्छेद के अनुसार है।

उसमें विधि-प्रश्न या अन्य प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं; और विशिष्ट कारणों या आधारों की अनुपस्थिति में, जिनसे उसके लिये मामले को मंगाना आदेश-मूलक बनाया जा सकता है, मेरे विचार में इसे अनुमति-मूलक बनाना भी ठीक रहेगा और यदि न्यायाधीश चाहे तो मामले को मंगा सकता है, पर यह आवश्यक नहीं है। यदि कोई कारण उल्लिखित होते कि अनुवर्ती अवस्थाओं में अथवा कोई राजनैतिक या अन्य बात अन्तर्ग्रस्त होने पर इस प्रकार उसे मंगाना अनिवार्य होगा, तो मैं विद्यमान रूप में अनुच्छेद पर आपत्ति नहीं करता। 'shall' के स्थान पर 'may' रख देने से न्यायालयों को वास्तव में सहायता मिलेगी और उनके कार्य में बाधा नहीं पड़ेगी। अतः मैं अपना संशोधन सदन में स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 में 'it shall' इन शब्दों के पश्चात् 'after taking the opinion of such court in writing' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है, तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''कि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस विधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो वह, उस न्यायालय का मत लिखित रूप में पूछने में पश्चात्, उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा निबटा देगा।''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि यदि इस संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अधीन न्यायालय में उत्पन्न हो जाता है, तो इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगाकर उसे निबटा सकता है। मेरे विचार में यह अधिक अच्छा है कि उस न्यायालय में उस मामले के निर्वचन का जहां तक संबंध है, उस न्यायालय का मत लिखित रूप में मांग लेना चाहिये, क्योंकि हम देखते हैं कई मामलों में उच्च न्यायालय अधीन न्यायालयों के निर्णयों से सहमत होता है। अत: श्रीमान्, इसका यह अर्थ नहीं है कि जहां तक सांविधानिक मामले का संबंध है, अधीन न्यायालय अपना मत नहीं दे सकते, पर क्योंकि उन्हें ऐसे मामले को निबटाने की शक्ति नहीं दी गई है और मामला उच्च न्यायालय में मंगा लिया जायेगा और जब ऐसा हो तब यह केवल वांछनीय ही नहीं युक्तियुक्त भी है कि जहां संविधान के निर्वचन के प्रश्न उठ खड़े हों, वहां उन न्यायालयों का मत भी जान लेना चाहिये और फिर उच्च न्यायालय को उसे निबटाना चाहिये। श्रीमान्, इन कुछ शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 की व्याख्या को हटा दिया जाये।''

श्रीमान्, वह अनावश्यक है।

***डा. बख्शी टेकचन्द:** श्रीमान्, प्रोफेसर के.टी. शाह और श्री मोहम्मद ताहिर के संशोधनों का विरोध करने में मुझे कुछ शब्द कहने हैं। प्रोफेसर शाह के संशोधन का यह आशय है कि अनुच्छेद 204 के प्रथम भाग में 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाये तो समस्त अनुच्छेद 204 अनावश्यक हो जायेगा, क्योंकि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 24 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 526 के अधीन उच्च न्यायालय को अधिकार है कि वह अपने अधीन किसी न्यायालय में लम्बित कोई व्यवहार वाद या आपराधिक मुकदमे को अपने पास मंगा सकता है। अनुच्छेद 204 में 'shall' शब्द रखने का कारण यही है कि उच्च न्यायालय के लिये यह बाध्यकारी कर दिया जाये कि वह ऐसे मामले को अपने पास मंगा ले, यदि उसका समाधान हो जाये कि अधीन न्यायालय के लम्बित मामले में इस संविधान के निर्वचन के संबंध में सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और निबटा देगा। यह बहुत आवश्यक है कि संविधान के निर्वचन के संबंध में समस्त प्रश्नों का विनिश्चय यथासंभव शीघ्र हो

[डा. बख्शी टेकचन्द]

जाये। अधीन न्यायालय में मुकदमें को एक-दो वर्ष या अधिक लग सकते हैं। फिर जिला न्यायाधीश को अपील की जा सकती है और वह मामला बहुत लम्बे समय के पश्चात् पहली या दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के पास आयेगा। इस बीच में सांविधानिक विधि संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रश्न अनिश्चित रह जायेगा। यह तो बहुत ही अवांछित है।

दूसरा कारण यह है। इन प्रश्नों पर यथासंभव शीघ्र प्रांत के सर्वोच्च न्यायालय का प्राधिकार युक्त विनिश्चय होना चाहिये। अन्यथा यह हो सकता है कि कोई विशेष प्रश्न किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त हो जो कि एक जिले में लम्बित हो; वही प्रश्न तीन-चार अन्य मामलों में अन्तर्ग्रस्त हो जो अन्य जिलों में लम्बित हों, और ये विभिन्न अधीन न्यायालय परस्पर विरोधी विनिश्चय दे सकते हैं और इससे बहुत गड़बड़ हो जायेगी। यदि हम चाहें कि महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्नों पर शीघ्रातिशीघ्र विनिश्चय हो, और साथ ही इन प्रश्नों पर प्रांत के सर्वोपरि न्यायालय द्वारा प्राधिकारयुक्त विनिश्चय दिया जाये तो 'shall' शब्द रहना ही चाहिये। इसी उद्देश्य से यह विशिष्ट उपबंध इस संविधान में रखना चाहते हैं। संविधान के प्रवर्तित होते ही उसके निर्वचन संबंधी प्रश्न पैदा हो सकते हैं। इसीलिये यह अपेक्षित है कि शीघ्र और प्राधिकारयुक्त विनिश्चय किये जायें। उच्च न्यायालय के ऐसे निर्णय से, यदि आवश्यक हो तो, उच्चतम न्यायालय में अपील जा सकती है और मामले का अन्तिम विनिश्चय समूचे देश के लिये किया जा सकता है। अत: यह अभीष्ट है कि संविधान में इसके लिये कुछ उपबंध रख दिया जाये।

श्री ताहिर ने एक और संशोधन पेश किया है कि जिस न्यायालय में वह मामला लम्बित हो, उसका मत लिखित रूप में मांग लेना चाहिये। मैं नहीं जानता कि इन प्रश्नों पर अधीन न्यायालय का मत पूछने से क्या लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि अनुच्छेद में यह नहीं लिखा है कि प्रत्येक मामला, जिसमें संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, स्वत: उच्च न्यायालय को चला जायेगा। दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शर्तें हैं जो पूरी होनी चाहिये। एक यह कि अन्तर्ग्रस्त प्रश्न इस संविधान के निर्वचन संबंधी सारवान विधि-प्रश्न होना चाहिये, और ऐसा प्रत्येक प्रश्न नहीं हो जिसमें ऐसा निर्वचन अन्तर्ग्रस्त, हो, चाहे वह घटना उत्पन्न हो या उस वाद से सम्बद्ध हो। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न होना चाहिये जो मामले के मूल तक जाता हो। फिर भी यह अपेक्षित नहीं है कि वह मामला उच्च न्यायालय में चला ही जाये। अनुच्छेद में शब्द ये हैं कि ''उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये।'' जब वह प्रश्न उच्च न्यायालय के ध्यान में आयेगा, तब वह उसका परीक्षण करेगा। यदि न्यायाधीशों का समाधान हो जाये कि अन्तर्ग्रस्त प्रश्न इस संविधान के निर्वचन संबंधी सारवान विधि-प्रश्न है, केवल तभी वह मामला उच्च न्यायालय में मंगाया जायेगा। ऐसे मामले में इसकी क्या आवश्यकता है कि उच्च न्यायालय में जाने से पूर्व अधीन न्यायालय का मत लिया जाये? इस संशोधन का तो यह असर होगा कि उन प्रश्नों पर निर्णय देर मे होगा और कार्यवाही अनावश्यक रूप में रुकी रहेगी। अत: मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद के मसविदे को स्वीकार कर लेना चाहिये और इस पर डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करके व्याख्या को हटा देना चाहिये। यह संशोधन इसलिये आवश्यक

हो गया है कि पहले व्याख्या के अनुसार यह अनुच्छेद केवल प्रांतीय उच्च न्यायालयों पर लागू होता था। अब नई व्यवस्था के अन्तर्गत देशी राज्यों के उच्च न्यायालयों को प्रांतीय उच्च न्यायालयों के समान बना दिया गया है, अतः यह व्याख्या अनावश्यक हो गई है। व्याख्या के बिना इस अनुच्छेद में बहुत अच्छा और महत्त्वपूर्ण उपबंध है, जो स्वीकार हो जाना चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे डा. अम्बेडकर को एक छोटा सा ही सुझाव देना है। यह अनुच्छेद बहुत आवश्यक है। जब उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि संविधान के निर्वचन संबंधी कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो उसे निःसंदेह अपने पास मंगा लेना चाहिये और निर्णय कर देना चाहिये। किंतु जैसा कि अनुच्छेद में लिखा है उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और उसे निबटा देगा। मस्विदा-समिति को इस पर विचार करना है कि क्या उस समूचे मामले को अपने पास मंगाना और निबटाना अपेक्षित है। मुन्सिफों के न्यायालयों में कई ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें ऐसा प्रश्न उठ सके। मेरे विचार में उच्च न्यायालय के लिये यह सर्वथा अपेक्षित नहीं है कि उच्च न्यायालय समूचे मामले को अपने पास मंगा ले और उसे स्वयं निबटाये। यही पर्याप्त है कि यह संविधान के निर्वचन संबंधी इस प्रश्न का विनिश्चय कर दे और फिर उसे उस न्यायालय को लौटा दे, जिससे कि वह संविधान के निर्वचन संबंधी विनिश्चय के अनुसार उसका निर्णय कर दे। हमने उच्चतम न्यायालय के संबंध में भी ऐसा ही उपबंध बनाया है। जब भी संविधान के निर्वचन के प्रश्न का उल्लेख हो, तब उच्चतम न्यायालय उसे पांच न्यायाधीशों की पूरी मंडली में भेजने के लिये बाध्य नहीं है। यदि उनका समाधान हो जाये कि यह एक सारवान प्रश्न है, तो वे उसे पूरे न्यायालय में भेजकर उसकी सम्मति जान सकते हैं और तत्पश्चात् वही पहला न्यायालय उस मत के अनुसार उस मामले का विनिश्चय करेगा। अतः मेरे विचार में हमारे लिये यह कहना पर्याप्त होगा कि वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा उच्च न्यायालय उसे निबटाने के लिये बाध्य नहीं होना चाहिये। उच्च न्यायालय के लिये सब प्रकार के मामलों को निबटाना बहुत कठिन होगा। उदाहरणार्थ, एक निषेधाज्ञा के मामले में प्रश्न उठ जाता है। उच्च न्यायालय के लिये समूचे प्रश्न की सुनवाई करना अपेक्षित नहीं है। अतः मैं चाहता हूं कि उच्च न्यायालय संविधान के निर्वचन संबंधी प्रश्न को ही अपने पास मंगा ले और फिर उसे पहले न्यायालय को लौटा दे जिससे कि वह उसे उस मत के अनुसार निबटा सके। मैं इस मामले का निर्णय डा. अम्बेडकर पर छोड़ देता हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** अध्यक्ष महोदय, उच्च न्यायालय के पास किसी मामले के अभिलेख को मंगाने और उसे निबटाने की शक्ति तो स्वयं ही प्राप्त है। अनुच्छेद 204 में कहा गया है कि यदि किसी मामले में संविधान के निर्वचन संबंधी कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, तो उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और निबटा देगा। मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह चाहते हैं कि 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। यदि आप 'may' शब्द चाहते हैं, तो उसमें स्वयं वह शक्ति है ही और उस शक्ति के अनुसार वह किसी मामले को अपने पास मंगाकर निबटा सकता है, चाहे

[मि. तजम्मुल हुसैन]

उसमें सारवान विधि-प्रश्न हो या कोई विधि-प्रश्न नहीं हो। अत: 'may' शब्द से हमें कुछ भी लाभ नहीं होगा। इस प्रश्न की मेरे माननीय मित्र डा. बख्शी टेकचन्द ने विस्तार से विवेचना की है और मैं उन युक्तियों को दुहराना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही बात कहना चाहता हूं कि मान लीजिये एक सारवान विधि-प्रश्न निहित है, तो प्रो. शाह के अनुसार उच्च न्यायालय अभिलेख को मंगा भी सकता है और चाहे न भी मंगाये। उच्च न्यायालय के लिये अभिलेख मंगाना अपेक्षित नहीं होगा। मान लीजिये कि उच्च न्यायालय अभिलेख नहीं मंगाता, देखिये कितना समय बरबाद होता है। एक मामला अधीन न्यायालय में विनिश्चित होकर उच्च न्यायालय में जायेगा तब तक तीन चार वर्ष लग सकते हैं। यह भी देखिये कि निम्न न्यायालय में और फिर अपीलीय न्यायालय में कितना व्यय होगा। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण विधि-प्रश्न लम्बित रहेगा और किसी को पता नहीं होगा कि क्या विनिश्चय होना है। सारवान विधि-प्रश्न जितना जल्दी उच्च न्यायालय में निश्चित हो जाये उतना ही अच्छा है। अत: मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

श्री मोहम्मद ताहिर के संशोधन में उन्होंने कहा है कि अधीन न्यायालय का मत भी पूछ लेना चाहिये। उच्च न्यायालय जब भी अभिलेख मंगाता है, वह निम्नतर न्यायालय का मत सदा पूछ लेता है। ये शब्द नितांत अनावश्यक और व्यर्थ हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

डा. अम्बेडकर का संशोधन बिल्कुल ठीक है। मैं उसका समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं चाहता हूं कि हम उठने से पहले इस अनुच्छेद को निबटा दें। बारह बज चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** मुझे भय है कि मुझे बारह बजे तो मंत्रिमंडल की एक बैठक में जाना है।

***अध्यक्ष:** तो मैं समझता हूं कि संशोधन के पक्ष-विपक्ष में अधिक कुछ कहने के लिये नहीं है। जो कुछ कहा जा सकता था, कहा जा चुका है। अधिक वक्तृताएँ नहीं होंगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र श्री भारती ने जो बातें कहीं थीं, उनके विषय में...

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, आपने मुझे बोलने के लिये कहा है। मैं दो-तीन मिनट से अधिक नहीं लूंगा। मैं अभी बोलूं या कल?

***अध्यक्ष:** कल।

अब सदन कल प्रात:काल के आठ बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सभा बुधवार तारीख 8 जून, 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।